

“यह क्षण हमारे जीवन-मरण का क्षण है; यदि हमने इस ऐतिहासिक क्षण में अपनी आँखें नहीं खोलीं तो हमें बहुत जल्द इस धरती पर से लुप्त हो जाना होगा। यह एक ऐसा मौका है जब जैनों को ‘जैन’ शब्द की पूरी ताकत से रक्षा करनी चाहिये और स्पष्ट शब्दों में कहना चाहिये कि ‘जैन’ शब्द का इस्तेमाल वही करे जो शाकाहारी हो, जो कोई नशान करता हो, और जो अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में अहिंसा को अधिकाधिक प्रतिबिम्बित करता हो। यदि हम यह चिन्ता करेंगे कि इस तरह आगामी जनगणना में हमारा आँकड़ा छोटा हो जाएगा तो हम यथार्थ से मुँह मोड़ रहे होंगे। ध्यान रहे कि प्रामाणिक जैन यदि एक भी बचा रहेगा तो उससे पूरा देश बचेगा और अप्रामाणिकों की बड़ी-से-बड़ी भीड़ भी हमारी अस्मिता को नहीं बचा पायेगी। —संपादकीय अंश

No-057646

Lo-43-15

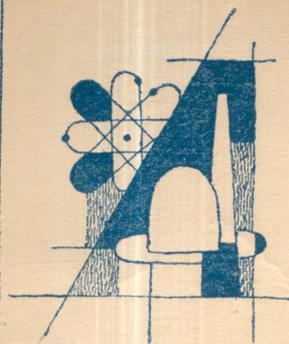
जीविके

विचार - मासिक

संपादक: जे. तमोचन्द्र जैन

जुलाई १९८६

आषाढ़ २०४३



तीर्थंकर १८४-१८५
जैन भौतिकी विशेषांक
अगस्त-सितम्बर १९८६

जिसमें आप पढ़ेंगे →

रिश्ते : धर्म के, विज्ञान के
यह अन्तिम कण क्या है ?
पुद्गल : स्वरूप एक, रूप अनेक
आकाश (स्पेस) और काल (टाइम)
सापेक्षतावाद और अनेकान्तवाद
अल्बर्ट आइन्स्टाइन और कुन्दकुन्दाचार्य
परमाणुवाद : धर्म में, विज्ञान में
पुद्गल के चमत्कार
हाथ मिला सकते हैं धर्म और विज्ञान

सिद्धिचार

विचार-मासिक

सिद्धिचार की वर्णमाला में सदाचार का प्रवर्तन

वर्ष १६; अंक ३; जुलाई १९८६
आषाढ वि.सं. २०४३; वी.नि.सं. २५१२

संपादक : डॉ. नेमीचन्द जैन
प्रबन्ध संपादक : प्रेमचन्द जैन
आकल्पन : संतोष जड़िया
छायांकन : विश्वास जैन

हीरा भैया प्रकाशन
६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर-४५२ ००१, मध्यप्रदेश

दूरभाष : ५८०४

वार्षिक शुल्क : तीस रुपये
प्रस्तुत अंक : तीन रुपये
आजीवन : दो सौ इक्यावन रुपये
विदेशों में वार्षिक : सौ रुपये

नईदुनिया प्रिंटरी, इन्दौर-४५२००९ द्वारा हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर के लिए मुद्रित

क्या / कहाँ

हिसानन्द

—संपादकीय ३

‘अंडे सबको भायें’ : ‘दूरदर्शन’ या अ-दूरदर्शन

—प्रलयंकर ७

‘जैन’ कोई जाति है या महज धर्म ??

—डॉ. अनिलकुमार जैन ११

नयनपथगामी भवतु मे (महावीराष्टक का राजस्थानी-अनुवाद)

—विपिन जारोली १५

जीने की कला : दस चरण (कविता)

—मुनि चन्द्रप्रभासागर १८

पुरुषार्थ यानी खुद की तथा दूसरों की सही समझ

—कन्हैयालाल सरावगी १९

रेणुम : खून से लयपथ हैं आप

—नेमीचन्द्र जैन २४

भगवान् पार्श्वनाथ : खोज जारी रखें

—डॉ. मंगल मेहता ३१

कितने महँगे हुए हैं हमारे साधु ? (ख़त : जो अन्तिम नहीं है)

—गणेश ललवानी ३९

पत्र-पत्रांश ४३

समाचार-परिशिष्ट ४५

तिनका ही सही; किन्तु ससम्मान आव. ४

हिंसानन्द

इन दिनों हिंसा के कई प्रकार सामने आये हैं। हिंसानन्द भी हिंसा का एक प्रकार है। 'हिंसानन्द' शब्द शास्त्रीय है; अतः जब हम इसकी व्युत्पत्ति पर विचार करते हैं, यह कि यह शब्द कहाँ से आया, कैसे बना; तब इसका आशय भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है। यह शब्द दो शब्दों के मेल से बना है: 'हिंसा' और 'आनन्द'; अर्थात् हिंसा में आनन्द लेना खुद करते वक्त, या दूसरों से कराते वक्त, या जब दूसरे कर रहे हों तब। हिंसानन्द ध्यान का एक भेद है। यह रौद्रध्यान है, जिसके मायने हैं हिंसा में तीव्रतम अनुराग या रस। वस्तुतः हिंसा का मतलब सिर्फ मारकाट नहीं है, उसका मतलब है स्वयं को हिंसा में प्रवृत्त करना, दूसरों को उस ओर लगाना, या निज के स्वार्थ के लिए इस बात की चिन्ता न करना कि कितने प्राणियों के प्राण जाएँगे और कितनों के बचेंगे? व्यापार-धन्धे में इस तरह का आचरण करना कि हिंसा हो; किन्तु उसे किसी तरकीब या तर्क से ढँका रखें। हम देख रहे हैं कि हिंसा हो रही है; किन्तु दलील देना कि इतना तो होगा ही, यह तो होता ही आया है, इतना हाशिया तो देना ही होगा। यह कहना कि देखिये हम तो 'जैन' हैं; किन्तु यदि हमारी जगह कोई और इस धन्धे में होता तो वह इससे ज्यादा हिंसा करता। ऐसे कुतर्कों से जब हम हो रही हिंसा को समर्थ बनाते हैं, या उसका समर्थन करते हैं, तब वह हिंसा हिंसानन्द की श्रेणी में आती है। देखा गया है प्रायः कि हिंसा के कार्यों में अपनी आजीविका, या कोई झूठा यश या सत्ता पाने की लालसा-लिप्सा में हम उस पर तरह-तरह से पर्दा डालने की कोशिशें करते हैं। हिंसानन्द हिंसा की सबसे अधिक घातक और घिनौनी शक्ल है। जब हिंसा अपनी भयावह शक्ल में आदमी के व्यक्तित्व में उल्लास का रूप ग्रहण करने लगती है, तब उसे 'हिंसानन्द' कहा जाता है।

इसके विपरीत है अहिंसानन्द। अहिंसा में असीम उल्लास का अनुभव करना। वस्तुतः अहिंसा की नहीं जाती, वह होती है; वह स्वभाव है। स्वभाव होता है वह, जो आठों प्रहर बना रहे, एक पल को भी साथ न छोड़े। हिंसा आप सतत कर नहीं संकते, अन्ततः आपको अहिंसा में लौटना ही होता है। शेर भी हिंसा के उद्दाम क्षणों के बाद अहिंसा में लौटता है। अहिंसा एक अखण्ड/अविच्छिन्न अनुभूति है, वह कुछ क्षणों के लिए गौण भले ही हो जाए; किन्तु यह असंभव ही है कि उसका सर्वथा लोप हो। अहिंसा की अनुभूति पर अस्थायी बादल भले ही छा जाएँ; किन्तु अन्ततः मनुष्य — कोई भी प्राणी — अहिंसा में ही लीन रहता है, रह सकता है। वह आत्मा का मूल व्यक्तित्व है।

इन दिनों चारों ओर हिंसा का नग्न ताण्डव है। आतंकवाद, या उग्रवाद के रूप में हिंसा ने एक नयी ही शक्ल ले ली है— राजनैतिक हिंसा। हमें भय है कि कहीं हिंसा का यह रूप हमारा स्थायी संस्कार न बन जाए। कई स्थानों से ऐसी खबरें मिलती हैं कि वहाँ कुछ लोगों को ज़िन्दा जला दिया गया; वहाँ नरबलि दे दी गयी, वहाँ बच्चों के अस्थिपंजरों, या प्रौढ़ नरकंकालों का व्यापार चल रहा है— यह सब/सारा हिंसानन्द है। हिंसा में रस लेने लगना मनुष्य के इतिहास का क्रूरतम अध्याय है। यदि इसे हमने नहीं रोका तो मानिये सारी दुनिया किसी दिन हिंसा की भट्टी में जल कर राख हो जाएगी।

भारत गाँवों का देश है। वह कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की ७० % से अधिक जनता खेतिहर है। पंजाब/हरियाणा अन्न के समृद्ध भण्डार हैं; किन्तु जब वहाँ दिन-दहाड़े हत्याएँ होती हैं, तब ज़ेहन पर कई सवाल आ खड़े होते हैं। क्यों हो रहा है पंजाब की कृषि-प्रधान धरती पर यह सब? क्या सिक्ख मांसाहारी हैं? हैं कुछ; सब नहीं। सिक्ख-गुरुओं के हुक्मनामों में साफ-साफ कहा गया है कि मांसाहार न किया जाए। ऐसे ही एक हुक्मनामे का एक वाक्यांश है—‘मांस-मछली दे नेडे नहीं आवणा’ (मांस-मछली के निकट नहीं जाना)। जब सिक्खों का खान-पान शाकाहार-प्रेरित है, उनमें-से अधिकांश जन जब काश्तकार हैं तब ऐसा कौन-सा कारण है कि वहाँ आतंकवाद है और आये दिनों लोग हिंसा में आनन्द ले रहे हैं; सैकड़ों निर्दोष/निरपराध लोगों की जानें ले रहे हैं? दो कारण हैं: एक, हिंसा का जो ताण्डव आज पंजाब में है वह सिक्खों की अपेक्षा छद्मवेशी सिक्खों की ओर से है; दो, सिक्खों के हुक्मनामा-प्रणीत खानपान में फर्क आया है। बढ़ते हुए मांसाहार के कारण उनमें/वहाँ के और-और निवासियों में तामसिकता बढ़ी है। आतंकवाद के पीछे तामसिकता का गहन हाथ है।

देखिये न। सरकार खुद आज किस तरह के दुश्चक्र में फँस गयी है (फँसती जा रही है)। अपने कर्मचारियों का वेतन बढ़ा रही है और बढ़े हुए वेतनों के लिए नये कर लगा रही है। फलस्वरूप महँगाई लगातार बढ़ रही है, नतीजतन फिर वेतन बढ़ेंगे और फिर नये कर आयेंगे; है कहीं कोई अन्त इस दुश्चक्र का? ऐसा ही दुश्चक्र हिंसा का बना लिया है उसने। अंडों और मछलियों की खेती; उस पर बेहिसाब खर्च; बिना यह सोचे कि अन्ततः कितना आर्थिक लाभ हो रहा है इससे मुल्क को? कहा यह जा रहा है कि जहाँ तक खाद्यान्न का प्रश्न है, हम पूर्णतः आत्मनिर्भर हो गये हैं। जब हम खाद्यान्न में अपने पाँवों पर खड़े हुए हैं तो फिर अंडों/मछलियों की खेती की ज़रूरत क्यों है? क्या आवश्यकता है उन विज्ञापनों की जो शाकाहारियों को आघात पहुँचा कर दूरदर्शन के पर्दे पर प्रचारित किये जाते हैं? क्या आवश्यकता है सरकार द्वारा इस तरह के झूठे प्रचार-प्रसार की कि देश की

८५% आबादी आज मांसाहार कर रही है (दे. नईदुनिया दैनिक, इन्दौर; ८ जुलाई १९८६)। क्या यह सफेद झूठ नहीं है? क्या यह सच नहीं है कि भारत एक कृषि प्रधान मुल्क है, जहाँ की अधिकांश जनता शाकाहार में विश्वास करती है? फिर एक वैष्णव कर्मचारी के मुख से इस तरह की मिथ्या बयानबाजी में क्या तुक है? वास्तविकता यह है कि ईसाइयों, मुसलमानों, पारसियों आदि में भी शाकाहार की प्रतिष्ठा है और मांसाहारियों की शाकाहारियों के प्रति इज्जत की भावना है। यह कहना कि मांस/मछली/अंडों में पोषक तत्व होते हैं, गलत है। सरकारी आँकड़े स्वयं समय-समय पर इस कथन को झुठलाते रहते हैं। विशेषता सिर्फ यह है कि अंडों आदि के व्यापारी इतना आकर्षक विज्ञापन करते हैं कि भोले-भाले लोग उसके माध्यम से कई असाध्य बीमारियों के चंगुल में फँस जाते हैं। क्या 'एड्स' की बीमारी के भय से अब मानव-जाति ब्रह्मचर्य की ओर नहीं लौटने लगी है? (दे. नईदुनिया दैनिक, इन्दौर, १२ जुलाई, १९८६)।

दुःखद यह है कि सरकार तामसिक खानपान को बढ़ावा दे रही है और आतंकवाद पर काबू पाना चाहती है। अंडे खिला रही है, मांसाहार का बैज्ञानिक प्रचार कर रही है, तेलों में मिलावट को प्रोत्साहित कर रही है और कह रही है कि हिंसा को रोका जाना चाहिये!! क्या उसके इस तरह के अहिंसा-विरोधी आचरण से हिंसा के इस क्रूरतम दौर को टाला जा सकता है? असंभव। सामान्य ज्ञान है कि आप जैसा नतीजा चाहते हैं तदनु रूप आचरण करते हैं; यदि वैसा करने में चूकते हैं तो नतीजे विपरीत आते हैं (आयेंगे)। यदि देश में-से हिंसा/हिंसानन्द को हटाना, या घटाना है तो हमें देशवासियों को सात्त्विक खानपान की ओर, बिना किसी सम्प्रदाय या धर्म पर ध्यान दिये, प्रवृत्त करना होगा और ऐसे तमाम प्रयत्नों को पूर्ण या अंश-विराम देना होगा जो भारतीय चरित्र के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं और उसके खानपान को भ्रष्ट करने में खुलेआम लगे हुए हैं। इस तथ्य की पूरे साहस के साथ सामने रखना होगा कि हमारा देश कृषि-प्रधान देश है, यहाँ शाकाहार की एक सुदीर्घ परम्परा है। इस परम्परा को चुनौती दे कर, भारत भारत रह पायेगा इसमें हमें संदेह है। यह साबित करना बहुत मुश्किल है कि हमारे महापुरुष शाकाहारी नहीं थे। इतिहास उठाएँ और देखें कि किसी भी महापुरुष ने न तो कभी मांसाहार को बढ़ावा दिया और न ही उसकी पैरवी की।

जैन क्या करें? क्या इस समय जबकि सारा देश/तमाम दुनिया हिंसानन्द में डूबी हुई है, जैनों का कोई कर्त्तव्य नहीं है? है, बहुत गहन दायित्व है उनके कन्धों पर। उन्हें इस समय अपने 'घन' का सदुपयोग करना चाहिये और एक टीम द्वारा इस तथ्य का सर्वेक्षण कराना चाहिये कि देश में हिंसा/हिंसानन्द के लिए जीवन-का कौन-सा पक्ष जिम्मेदार है? उन्हें देश के शाकाहारियों का एक ऐसा मुद्दह संगठन बनाना चाहिये जो पूरे मुल्क, उसके विभिन्न समूहों का व्यापक सर्वेक्षण करे

और पता लगाये कि एक शाकाहारी और मांसाहारी की प्रवृत्तियों/उपलब्धियों में कहाँ-कौन-सा अंतर है? वे गंभीरतापूर्वक छानबीन करें कि आतंकवादियों में-से मांसाहारी कितने हैं और शाकाहारी कितने? जो लोग हिंसा के क्षेत्र में हैं क्या उनमें शाकाहारी अधिक हैं या मांसाहारी? जिन राज्यों में आज हिंसा का दौर है वहाँ उन राज्यों में अन्न की खपत अधिक है या मांस-मछली-अंडों की? पता लगाया जाए कि हमारे बुद्धि/व्यायामजीवी जन शाकाहार कर रहे हैं या मांसाहार? दोनों के बीच क्या प्रतिशत है? पता लगायें कि जो बीमारियाँ फैल रही हैं, या जो लोग अस्पतालों में दाखिल होते हैं, उनमें-से मांसाहारी कितने और शाकाहारी कितने हैं/होते हैं? जो लोग असाध्य बीमारियों के शिकार होते हैं उनमें से मांसाहारी कितने और शाकाहारी कितने होते हैं? सरकार जिस तरह के विज्ञापन आकाशवाणी और दूरदर्शन तथा अन्य प्रचार-माध्यमों से कर रही है, उसमें वास्तविकता कितनी है? क्या मांसाहार शाकाहार की अपेक्षा अधिक पीष्टिक होता है? क्या वह आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद है? क्या स्वास्थ्य की दृष्टि से मांसाहार शाकाहार की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है? क्या मांसाहार का भारतीय संस्कृति से कोई सीधा तालमेल है? क्या जिस तरह का हिंसक भारतीय चरित्र सामने आ रहा है उसमें आहार की कोई भूमिका है? ये सब इतने महत्व के प्रश्न हैं, जिनकी अनदेखी करना ठीक नहीं है - बल्कि कहा जाए कि आत्मघाती है।

क्या यह जरूरी नहीं है कि हम मंदिर-बंदिर/कल्याणक-वल्याणक, बनाना/करना छोड़ कर हम इस मोर्चे पर तुरन्त आ जाएँ और अपनी सारी ताकत शाकाहार पर; आहार-संबंधी खोजों पर लगा दें और शाकाहार को ले कर मंदिरों की तरह हजारों-हजार प्रयोगशालाएँ स्थापित करें जिनकी साप्ताहिक/पाक्षिक बुलेटिनों द्वारा देश को शाकाहार की ओर प्रवृत्त करें? हम अपना सारा बल/सारे आर्थिक स्रोत इस ओर मोड़ दें। सारे देश की तथाकथित संपदा को क्या हमें अहिंसा के इस रचनात्मक अभियान में नहीं लगा देना चाहिये? वे नेतागण, जो आज व्यर्थ के कामों में/ऊल-जलूल समारोहों में फँसे हैं क्या मैदान में आ कर उन्हें अपने अनुगामियों को इस ओर नहीं लाना/लगाना चाहिये?

इस क्षण यह हमारे जीवन-मरण का सवाल है; यदि हमने इस ऐतिहासिक क्षण में अपनी आँखें नहीं खोलीं तो हमें बहुत जल्द इस धरती पर से लुप्त हो जाना होगा। यह एक ऐसा मौका है जब जैनों को 'जैन' शब्द की पूरी ताकत से रक्षा करनी चाहिये और स्पष्ट शब्दों में कहना चाहिये कि 'जैन' शब्द का इस्तेमाल वही करे जो शाकाहारी हो, जो कोई नशा न करता हो, और जो अपने रोजमर्रा की जिन्दगी में अहिंसा को अधिकाधिक प्रतिबिम्बित करता हो। यदि हम यह चिन्ता करेंगे कि इस तरह आगामी जनगणना में हमारा आँकड़ा छोटा हो जाएगा तो हम यथार्थ से मुँह मोड़ रहे होंगे। ध्यान रहे कि प्रामाणिक जैन यदि एक भी बच रहेगा तो उससे पूरा समाज बचेगा और अप्रामाणिकों की बड़ी-से-बड़ी भीड़ भी हमारी अस्मिता को नहीं बचा पायेगी। □□

‘अंडे सबको भायें’ : दूरदर्शन या अ-दूरदर्शन

स्वतन्त्र भारत की जड़ें तीन चूहे कुतर रहे हैं : मादक पदार्थ, अंडे/मांसाहार, और धूम्रपान ।

मेरे एक वरिष्ठ हितैषी ने अपने एक विस्तृत पत्र में भारत-जैसे कृषिप्रधान मुल्क में बढ़ते हुए मांसाहार पर गहरी चिन्ता व्यक्त की है ।

वे जैन नहीं हैं; तथापि जैन हैं चूंकि ‘जैन’ कोई जाति नहीं है, वह इन्द्रियों पर विजय पाने की एक कला है, सफल जीवन जीने की कला है, अहिंसा और परस्पर प्रीति का विज्ञान है ।

उन्होंने लिखा है—

बर्तानिया में हुए एक व्यापक सर्वेक्षण के अनुसार वहाँ की ‘वेजीटेरियन सोसायटी’ से हर हफ्ते तकरीबन १२०० पूछताछ (खानपान के संदर्भ में) की जाती है ‘सोसायटी’ का अनुमान है कि यदि यह सिलसिला यथावत चलता रहा तो बर्तानिया की आधी आबादी शाकाहार करने लगेगी (किन्तु भारत: विशेषत: जैन समाज?) ।

इसी तरह सुदीर्घ जीवन के रहस्य का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है कि एक शाकाहारी के बीमार पड़ने पर उसे अच्छा होने के लिए एक मांसाहारी की तुलना में आधा समय ही लगता है । ब्रिटेन की ‘नेशनल हेल्थ सर्विस’ को एक शाकाहारी के स्वास्थ्य की आजीवन देखभाल पर कुल जमा १९००० डॉलर खर्च करने पड़ते हैं जबकि एक आमिषभोजी पर ९०००० डॉलर ।

तुलना से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि शाकाहार श्रेष्ठ है ।

हमारा यह कथन कोई गप या कल्पना

नहीं है बल्कि एक स्थापित तथ्य है ।

किन्तु इसके विपरीत भारत में मांसाहार दिनोंदिन बढ़ रहा है ।

अंडों की खपत को जानबूझ कर एक



‘ईट मोर एग्ज’ : अण्डों की राजनीति

व्यापक वाणिज्यिक साजिश द्वारा निरन्तर बढ़ाया जा रहा है ।

बम्बई के क्राफर्ड मार्केट के सीलनभरे तहखानों में बैठ कर अंडों के सात व्यापारी जो षड्यन्त्र करते हैं, सारे देश को उसके प्रति सावधान हो जाना चाहिये ।

ये धन्धेबाज दिनरात यही सोचते रहते हैं कि अंडों को निर्विकारी भारतीय जीवन में किस तरह दाखिल किया जाए । बम्बई में हर रोज १२ से १६ लाख अंडे बेचे जाते हैं और पूरे देश में प्रतिवर्ष १२ अरब अंडों का उत्पादन होता है ।

क्राफर्ड मंडी के शैतान

उन शाकाहारियों को जो संस्कारवश अंडे नहीं खा सकते तरह-तरह के शब्द-छल और भाषाई फरेब से ठगने और बरगलाने की हरचंद कोशिश करते हैं।

‘टाइम्स ऑफ इंडिया’ (२९ नवम्बर १९८१) के अनुसार एक अंडा-व्यापारी ने शाकाहारियों को भरमाने के लिए अंडों के लिए “रामलड्डू” नाम सुझाया था; किन्तु जब इसका कड़ा विरोध हुआ तो उसे तुरन्त वापिस लेना पड़ा।

कभी कहा जाता है—

‘अंडा फलाहार है’

कभी कहा जाता है—

‘अंडा निर्जीव है’

कभी कहा जाता है—

‘अंडा शाकाहार है’

और कभी कहा जाता है—

अंडे दो प्रकार के होते हैं; हिंसक, अहिंसक हम ‘अहिंसक’ अंडे बेचते हैं; इन्हें खाइये, इन्हें खरीदिये।

कई-कई तरह की शरारतों और चालबाजियों से अंडों का उत्पादन बढ़ाया जा रहा है और उनकी खपत को झूठी ऊँचाई देने की कोशिश की जा रही है।

एक संस्थान है। नाम है—

नेशनल एग कोऑर्डिनेशन कमिटी (राष्ट्रीय अंडा समन्वय समिति)।

यह ‘कमिटी’ दिनरात इस तरह के भ्रामक विज्ञापन करती है कि लोग शाकाहार छोड़ें और जम कर अंडे खायें। पता नहीं ‘टीवी’ इस तरह के अतिरंजित झूठे विज्ञापनों को कैसे तरजीह और संरक्षण देता है?

‘नेएकोक’ का सालाना बजट है एक करोड़ रुपया; जिसमें से आधा करोड़ सिर्फ विज्ञापनों पर खर्च होता है।

जहाँ एक ओर यह समिति पचास लाख रुपया अंडों के विज्ञापन पर खर्च करती है, वहाँ समृद्ध जैन समाज सिर्फ मामूली प्रस्तावों और शिष्टमण्डलों तक सीमित रह कर इन सारी साजिशों को झेलता है। उसकी इस सहनशीलता की तारीफ करनी होगी; करनी चाहिये।

जहाँ से किसी महासभा ने एक अपील प्रसारित की है वहीं उसकी पलक-तले एक ऐसा जैन परिवार है, जो अंडों का धन्धा करता है और प्रति पेटो तीस रुपया कमाता है। जो बेटा यह धन्धा करता है उसकी माँ इसलिए तीन दिन भूखी रही कि किसी तरह लड़का इस धंधे को छोड़ दे; किन्तु वह ने साफ कह दिया कि अंडों का यह धंधा इसलिए बंद नहीं किया जा सकता चूँकि इससे हर रोज काफी बड़ी आमद होती है। बेधारी माँ को अपना-सा मुँह ले कर किसी और गाँव चला जाना पड़ा।

इसी दिल्ली में पिछली महावीर जयन्ती के जुलूस में-से दो जैन तरुण एक गली में मुड़े; अपनी जेबों में-से उन्होंने दो उबले अंडे निकाले, खाये और फिर “अहिंसा परम धर्म है” का नारा लगाते हुए जुलूस में शरीक हो गये।

हमें आश्चर्य है कि हम अपने गरेबाँ में तो देखते नहीं हैं और शिष्ट-मण्डल ले कर राष्ट्रपतिजी और प्रधानमन्त्रीजी से मुलाकातें लेने जाते हैं!!!

क्या हम सारे काम छोड़ कर युद्धस्तर पर नेशनल एग को. कमिटी की तरह की कोई ‘अंडा विरोधी समिति’ बना कर उस पर एक करोड़ रुपया खर्च नहीं कर सकते?

क्या यह काम तीर्थों की रक्षा से कम अहमयित रखता है?



ग्रण्डे से सेहत, ग्रण्डे से चुस्ती : दूरदर्शन का जीवन-दर्शन

क्या चरित्र और खान-पान की शुद्धता से बड़ा कोई तीर्थ हो सकता है ?

क्या हमारे नेताओं को इस चुनौती को तुरन्त बिना किसी झिझक के स्वीकार नहीं कर लेना चाहिये ?

क्या सारे मुल्क में एक अंडा-विरोधी अभियान (केम्पेन) छेड़ने के लिए यह एक उचित क्षण नहीं है ?

हमारे छायाकार श्री विश्वास जैन ने 'टीवी' से जो चित्र लिये हैं और विज्ञापन का जो मज़मून है क्या उसे पढ़ कर हमारी आँखें नहीं खुलेंगी ?

विज्ञापन है अक्षरशः इस तरह—

अंडे, अंडे, अंडे
उबले अंडे, फ्राइड अंडे, ऑमलेट
मूर्गी के अंडे

वल्ले, कमाल दा एग
हर मौसम में खाओ अंडे
जब जी चाहे खाओ अंडे
अंडे से सेहत
अंडे से चुस्ती
अंडे का कुलचा
अंडे का खूब मजा
घर में अंडे, बाहर अंडे
जो भी खाओ अंडे
उबले अंडे, फ्राइड अंडे, ऑमलेट
अंडे सबको भायें ।

क्या विज्ञापन की अन्तिम पंक्ति को कानूनन चुनौती देना संभव नहीं है ? है; किन्तु तब, जब हम फिजूल की मुकदमेबाजियों, जुलूसों, रथयात्राओं, अभिनन्दन-समारोहों, उपाधि-वितरणों और महँगे चातुर्मासों से बाज आयें—उनसे फुरसत पायें ।

तीर्थकर : जुलाई ८६/९



'कमाल दा एग' : दूरदर्शन

शायद आप नहीं जानते कि लगभग तीस प्रतिशत जैन युवक चटखारा ले कर ऑमलेट खाने लगे हैं; यदि भरोसा न हो तो व्यापक सर्वेक्षण करवायें और अपनी आँखें खोलें या खुदकुशी की व्यवस्था करें।

क्या आप सोचते हैं कि इस तरह जैनों की आबादी बढ़ रही है? असलियत तो यह है जनाब कि आबादी घट रही है और काफी रफ्तार से घट रही है।

सुनिये, जैन वह नहीं है जो जैन घर में जनम गया (यह तो संयोग है); बल्कि जैन वह है जो श्रावकाचार का पालन कर रहा है।

क्या हम उन वास्तविकताओं को प्रकट नहीं कर सकते जो अंडे की बन-ट/रचना तथा उससे होने वाले नुकसानों से संबन्धित हैं?

क्या हम ऐसी लाखों-लाख पुस्तिकाएँ प्रचारित नहीं कर सकते जो अंडों से होने वाली हानियों का इजहार करती हैं?

क्या हेलीकॉप्टरों/वायुयानों से पुष्प-

वृष्टियाँ करवाने की जगह हम इस तरह के हेंडबिल नहीं गिरवा सकते?

नहीं;

बल्कि सिर झुका कर

एक डरपोक/नपुंसक/हारे हुए व्यक्ति की तरह ऐसे तथ्यों को सहन करते हैं

जो 'नेशनल एग कोऑर्डिनेशन कमिटी' के उपाध्यक्ष विश्वनाथ दुबे इन्दौर में ७ जुलाई १९८६ को कह सकते हैं।

श्री दुबे का कथन है कि

भारत को ८५% जनता मांसाहार करती है; क्या यह सफेद झूठ नहीं है?

क्या 'नेएकोक' के उपाध्यक्ष को इस झूठ के लिए सार्वजनिक माफी नहीं माँगनी चाहिये? क्या उन्हें शाकाहार करने वाली ८०% जनता को इस तरह के आत्मघाती बयान देने की अनुमति देनी चाहिये?

उपाध्यक्षजी का कथन है कि देश में साठ हज़ार पौल्ट्री फार्म हैं, जो प्रतिवर्ष बारह सौ करोड़ अंडे पैदा करते हैं।

मध्यप्रदेश में, जहाँ अभी-अभी गोमटगिरि-जैसा महान् तीर्थ उगा है, सत्तर लाख मुगियाँ हैं जो प्रतिदिन साढ़े चार लाख अंडे देती हैं।

क्या 'नेएकोक' को भ्रामक और गलतबयानी द्वारा शाकाहार में भरोसा/आस्था रखने वाली भारतीय जनता को अपनी हरकतों से आघात पहुँचाने का कोई हक है?

उन्हें हक है या नहीं यह तो हम नहीं जानते; किन्तु इतना अवश्य

जानते हैं कि अहिंसा में चरम विश्वास रखने वाले जैन एक लम्बी चादर तान

कर गहरी नींद में खरटे भर रहे हैं और उन्होंने इस तरह के भ्रामक बयान और

विज्ञापनों की इजाजत दे रखी है?

(शेष पृष्ठ ३५ पर)

देश में जब जनगणना होती है, तब हमारे मन्दिरों में भी बड़े-बड़े पोस्टर लगे हुए मिल जाते हैं। ये पोस्टर किसी-न-किसी बड़ी जैन संस्था द्वारा प्रकाशित कराये जाते हैं। इनमें जैन बन्धुओं से एक ही अपील होती है— 'आप जाति के कॉलम में जैन लिखायें'। यह अपील कुछ चौंका देने वाली है। क्या वास्तव में 'जैन' नाम की कोई जाति भारत में रहती है; या पहले कभी रहती थी ?

प्राचीन भारत में वर्ण-व्यवस्था थी। इसकी स्थापना प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ ने की थी। उस समय मात्र तीन वर्ण थे : वैश्य, क्षत्रिय, तथा शूद्र। बाद में भरत चक्रवर्ती को एक और वर्ण (ब्राह्मण) की स्थापना की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इस तरह तीन के स्थान पर चार वर्ण हो गये। यह वर्ण-व्यवस्था भगवान् महावीर के लगभग तीन सौ वर्ष बाद तक अविरत चलती रही। विभिन्न व्यक्तियों के कार्य तथा उनकी प्रवृत्तियों के आधार पर ही उन्हें विभिन्न वर्णों में बाँटा गया था। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ तो बदलती रहती हैं; अतः एक ही परिवार के लोग विभिन्न वर्णों के रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। एक वर्ण के लोग दूसरे वर्ण के लोगों में विवाह-सम्बन्ध भी करते थे। क्षत्रिय पुरुष क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र कन्या से विवाह कर सकता था। ब्राह्मण पुरुष ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र कन्या से विवाह कर सकता था। वैश्य पुरुष वैश्य या शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता था। कोई वर्ण किसी विशेष धर्म से सम्बन्धित नहीं था। किसी भी वर्ण वाला कोई भी धर्म ग्रहण कर सकता था। इतना ही नहीं, एक ही परिवार के लोग विभिन्न धर्मों को ग्रहण करते थे। भगवान् पार्श्वनाथ के नाना जनेतर थे। राजा श्रेणिक पहले बौद्ध था; लेकिन उसकी रानी चेलना जैन

'जैन' कोई जाति है या महज धर्म ???

कुछ 'जैन' नामधारी ऐसे भी मिलेंगे, जो चाण्डालों से बदतर कार्य करते हैं। कुछ समय पूर्व एक मामला सामने आया था। एक फर्म का नाम 'जैन शुद्ध वनस्पति' था; किन्तु उसमें धन्धा होता था घी-में-चर्बी मिलाने का। मैं एक ऐसे परिवार को जानता हूँ, जिसकी फर्म का नाम है 'जैन वेंजिटेबल शाॅप'; किन्तु जो बेचती है अण्डे। उनसे आग्रह करने पर कि ऐसा करना अनुचित है, वे तरह-तरह के कुतर्क करने लगे। एक जैन बन्धु ऐसे भी हैं जो सूखी मछलियों को पोसने का धन्धा करते हैं। चमड़े तथा जतों का व्यापार करने वाले जैन तो बहुत सारे हैं। क्या ऐसे लोगों को कोई हक है कि वे स्वयं को 'जैन' कहें ?

—डॉ. अनिलकुमार जैन

थी। राजा श्रेणिक ने बादमें जैनधर्म स्वीकार कर लिया, लेकिन उसके बेटे अजातशत्रु (कुणिक) ने बौद्धधर्म स्वीकार किया। राजा चन्द्रगुप्त मौर्य आचार्य भद्रबाहु के शिष्य थे, बाद में वे दिगम्बर मुनि भी हो गये थे; लेकिन उनका पोता सम्राट् अशोक बौद्ध धर्मानुयायी था।

कहने का अर्थ यह है कि विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग धर्मों को मानना एक ही परिवार में रहने के लिए बाधक

नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति को विचारों की परिपूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उसे यह अपनी बुद्धि से ही निर्णय करना होता था कि वह किस धर्म को ग्रहण करे तथा किसे न करे। कभी किसी पिता ने अपने पुत्र पर कोई धर्म थोपा हो, ऐसा कहीं देखने में नहीं आता है।

भगवान् महावीर के कुछ समय पहले से ही ब्राह्मणवाद का बहुत जोर था। ब्राह्मण स्वयं को सर्वोपरि समझते थे। वे अपने को पुजवाने लगे। उन्होंने एक नयी व्यवस्था को जन्म दे दिया यह कि ब्राह्मण पिता का पुत्र ब्राह्मण वर्ण का ही कहलायेगा फिर चाहे वह चाण्डाल का कार्य ही क्यों न करे? इसी प्रकार शूद्र पिता का पुत्र भी शूद्र होगा, चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो? यह ब्राह्मणों की इस व्यवस्था का ही परिणाम था कि देश में विभिन्न जातियों की स्थापना हो गयी। कहते हैं, राजा चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में उत्तर भारत में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था। विभिन्न वर्गों या समुदाय रोजगार की तलाश में विभिन्न दिशाओं में पलायन कर गये। कहीं वर्ण-संकरता न हो जाए इस भय से विभिन्न वर्गों या समुदाय विभिन्न जातियों में परिणत हो गये। ब्राह्मणों ने ऐसा चक्र घुमाया कि कालान्तर में ये जातियाँ पुनः एक वर्ण में परिणत नहीं हो सकीं।

इस स्थिति में भी एक ही परिवार के सदस्य अलग-अलग धर्मों को ग्रहण कर सकते थे। कोई धर्म किसी जाति विशेष से सम्बन्धित नहीं रहा। ज्ञातव्य है किसी जमाने में जैनधर्म को मानने वाले लोग करोड़ों की संख्या में थे; लेकिन आज ये उतनी संख्या में नहीं हैं। स्पष्ट है कि बहुत से लोगों ने जैनधर्म छोड़ कर अन्य धर्म ग्रहण कर लिया। यदि जैनधर्म पहले से ही जाति-विशेष से सम्बन्धित रहा होता तो आज भी जैनों की संख्या उतनी ही होती जितनी पहले

कभी हुआ करती थी। इतना ही नहीं, हमारे सभी तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, लेकिन आज जैनधर्म को मानने वाला शायद ही कोई क्षत्रिय हो। स्पष्ट है, कालान्तर में क्षत्रियों ने जैनधर्म छोड़ दिया। इससे यह जाहिर होता है कि जैनधर्म किसी जाति-विशेष से सम्बन्धित नहीं था। पहले विभिन्न जातियाँ तो थीं, लेकिन 'जैन जाति' जैसी कोई जाति नहीं थी।

जब हम पिछले तीन-चार वर्ष पूर्व का इतिहास उठा कर देखेंगे तो यह और अधिक स्पष्ट हो जाएगा कि दुनिया में कहीं भी 'जैन' नाम की कोई जाति नहीं थी। पण्डित कविवर बनारसीदासजी जैनधर्म के महान् ज्ञाता थे। उन्होंने अपनी आत्म-कथा 'अर्द्ध कथानक' में अपना विस्तृत परिचय दिया है। उन्होंने उनकी जाति जैन है, इसका उल्लेख कहीं नहीं किया है। पण्डित-प्रवर टोडरमलजी ने भी स्वयं को 'जैन' जाति का होना नहीं बताया है। पं. दौलतरामजी ने भी अपनी जाति 'जैन' नहीं लिखी है। यदि हम प्राचीन मूर्तिलेख, शिलालेख तथा ग्रन्थ-प्रशस्तियों का अवलोकन करें, तो स्पष्ट हो जाएगा कि पहले विभिन्न जातियों, जैसे-अग्रवाल, खण्डेलवाल ओसवाल आदि का उल्लेख तो प्रचुर मात्रा में आया है, लेकिन जैन जाति का उल्लेख कहीं नहीं हुआ है।

आज से लगभग सौ साल पहले लोगों ने अपने नाम के साथ 'जैन' लिखना शुरू किया था; लेकिन तब मात्र वे लोग ही जैन लिखते थे, जो जैन धर्मानुयायी थे। ये लोग भी अपनी जाति जैन नहीं बताते थे; हाँ, वे अपना धर्म अवश्य जैन बताते थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले तक ऐसा ही था; लेकिन देश के स्वतन्त्र होने के साथ ही नया संविधान बना। उसकी रचना के समय हमारे राजनयिकों ने अनुभव किया कि

जैनधर्म सहित कुछ अन्य धर्मों को मानने वाले लोग बहुत कम संख्या में हैं; अतः राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने धर्म के आधार पर विभिन्न जातियों को जन्म दे दिया। इनमें छह मुख्य हैं : हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, तथा बौद्ध। इस व्यवस्था का उस समय सभी लोगों ने स्वागत किया। जैन नेता भी इससे प्रसन्न थे; लेकिन आज जब हम इस व्यवस्था पर विचार करते हैं तब लगता है कि यह बहुत अनर्थ हो गया।

किसी अन्य धर्म का अहित हुआ हो, या न हुआ हो किन्तु जैनधर्म का बहुत अहित हुआ। देश की स्वतन्त्रता के समय जो लोग जैन धर्मानुयायी थे उनके वंशज आज भी अपने नाम के आगे 'जैन' लिखते हैं, परन्तु वे जैनधर्म का पालन नहीं करते। दूसरी ओर यदि कोई जैनेतर जैनधर्म को अंगीकार करना चाहेगा तथा अपने नाम के साथ वह 'जैन' जोड़ना चाहेगा तो उसका विरोध होगा। हमारे नेता ही कहेंगे कि उसकी जाति 'जैन' नहीं है, वह अजैन है। इस प्रकार आज हम जैनधर्म को दो तरह से नुकसान पहुँचा रहे हैं। एक तो जो अपने को 'जैन' कहते हैं, वे जैनधर्म का पालन नहीं करते तथा दूसरे हम उन जैनेतर लोगों को 'जैन' मानने को तैयार नहीं हैं, जो जैनधर्म को तहेदिल से स्वीकार करना चाहते हैं।

आज ऐसे बहुत-से 'जैन' उपनामधारी मिल जाएँगे जो न तो कभी जैन मन्दिर जाते हैं और न ही जैनधर्म की कोई चर्चा करते हैं। यहाँ तक कि उन्हें यह भी नहीं मालूम कि महावीर जयन्ती, पर्युषण पर्व आदि कब आते हैं! बहुत-से ऐसे लोगों को 'णमोकार मन्त्र' तक नहीं आता। कुछ 'जैन' उपनामधारी ऐसे भी मिलेंगे, जो चाण्डालों से भी बदतर कार्य करते हैं। कुछ समय पूर्व एक प्रकरण सामने आया था। एक फर्म

का नाम था 'जैन शुद्ध वनस्पति' और उसमें धन्धा होता था घी-में-चर्ची मिलाने का। मैं एक ऐसे परिवार को जानता हूँ, जिसकी फर्म का नाम है 'जैन वेजीटेबिल शॉप' किन्तु जो बेचती है अण्डे। उनसे आग्रह करने पर कि यह कार्य अनुचित है, वे तरह-तरह के कुतर्क करने लगे। एक जैन बन्धु ऐसे भी हैं, जो सूखी मछलियों को पीसने का धन्धा करते हैं। चमड़े तथा जूतों का व्यापार करने वाले तो बहुत सारे 'जैन' हैं। क्या ऐसे लोगों को कोई अधिकार है कि वे स्वयं को 'जैन' कहें?

आज ऐसे बहुत-से युवक मिल जाएँगे, जो अपने नाम के आगे 'जैन' तो लिखते हैं; लेकिन जैनधर्म का नाम कभी नहीं लेते; बल्कि अण्डा, माँस और मदिरा का खुलकर सेवन करते हैं। तो क्या ऐसे लोगों का अपने नाम के साथ 'जैन' लिखना उचित है? हरगिज नहीं। आखिर ये लोग जैनधर्म को बदनाम करने में क्यों जुटे हुए हैं? ऐसे लोगों को अपने नाम से 'जैन' शब्द को अविलम्ब हटा लेना चाहिये। ऐसा न करने से जैनधर्म की प्रतिष्ठा/प्रामाणिकता को बहुत ठेस पहुँचती है। यदि कोई व्यक्ति जैन धर्मानुयायी है, तो कोई जरूरी नहीं है कि उसका बेटा भी जैन धर्मानुयायी हो। यदि कोई शाकाहारी है, तो कोई जरूरी नहीं है कि उसकी संतान भी शाकाहारी ही हो; बल्कि वास्तविकता पर जाएँ, सचाई को देखें। बहुत-से जैनेतर यह कहते मिल जाते हैं कि बहुत-से जैन युवक भ्रम-कर्म को नहीं मानते तथा अण्डा, माँस आदि का सेवन करते हैं। हमें अफसोस इस बात का नहीं है कि वे जैनधर्म को क्यों नहीं मानते या वे माँसाहारी क्यों हैं? दुःख इस बात का है कि वे अपने नाम के आगे 'जैन' क्यों लिखते हैं? जब उनका जैनधर्म से मीलों तक का कोई नाता-रिश्ता नहीं है, तब उन्हें क्या अधिकार है कि वे स्वयं को 'जैन' कहें?

दर्शन-शास्त्र के विद्यार्थी इस तथ्य को भलीभाँति जानते हैं कि जैन दर्शन एक उच्चकोटि का दर्शन है। यही कारण है कि बहुत से जैनेतर दर्शनशास्त्रियों ने अपने व्यवहार में जैनधर्म को पूरी तरह धारण किया; लेकिन वे खुद को जैन इसलिए नहीं कह सके कि उनके पिता जैन नहीं थे और यदि वे 'जैन' लिखना प्रारम्भ कर भी देंगे तो जैन लोग उन्हें स्वीकारेंगे नहीं।

आचार्य विनोबा भावे भारतीय दर्शनों के अच्छे ज्ञाता थे। वे जैनधर्म से बहुत प्रभावित थे। अपने जीवन में भी वे वही करते थे, जो एक जैन को पहले करना चाहिये। वे एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिनके मन में यह विचार आया कि जैसे मुसलमानों का धर्मग्रन्थ 'कुरान' है, ईसाइयों की 'बाइबिल', हिन्दुओं की 'गीता' तथा सिखों का 'गुरुग्रन्थ साहब' हैं, उसी प्रकार जैनों का भी एक धर्मग्रन्थ होना चाहिये। इसे ध्यान में रख कर उन्होंने 'समण सुत्तम्' नामक संग्रह तैयार कराया। कहते हैं इसके प्रथम प्रकाशन में विनोबाजी ने उस द्रव्य (धन) का प्रयोग किया, जिसे वे एक समय का भोजन त्यागने पर बचाया करते थे। 'भूमिका' में विनोबाजी ने यहाँ तक लिखा है कि 'मैं जैनधर्म की सभी क्रियाएँ करता हूँ। सच पूछो तो मैं जैन ही हूँ।' इतना ही नहीं, उन्होंने समाधिपूर्वक मरण भी किया। प्रश्न है कि क्या विनोबा जैन नहीं थे? क्या वे इसलिए 'जैन' नहीं थे, चूँकि उनके पिता जैन नहीं थे?

आगरा में एक हरिजन थे, जिनका नाम कदाचित् 'लालमणि' था। वे कट्टर कांग्रेसी थे तथा जैन गुरुओं/साधुओं से बहुत प्रभावित थे। उन्हें जैनधर्म का अच्छा ज्ञान था। वे जैनधर्म की क्रियाओं का न सिर्फ पालन करते थे, बल्कि उनका उपदेश/प्रवचन भी करते थे। क्या वे इसलिए 'जैन' नहीं थे कि हरिजन थे?

अकलेश्वर में एक सज्जन हैं। वे जन्म से घाची (तेली) हैं; लेकिन वे जैनधर्म के अच्छे विद्वान् हैं। वे जमीकन्द आदि का सेवन नहीं करते तथा मन्दिर में नित्यप्रति 'समयसार' आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का प्रवचन करते हैं। क्या वे 'जैन' नहीं हैं?

जैनधर्म किसी की बपौती नहीं है कि जिसे नाम के साथ जैन लिखने वालों के अलावा कोई और नहीं मान सकता। 'जैन' कोई जाति नहीं है। 'जैन' तो धर्म है। इसे कोई भी व्यक्ति स्वीकार कर सकता है। जो व्यक्ति भगवान् महावीर और उनके उपदेशों में श्रद्धा रखता है, वह जैन है तथा वह अपने नाम के साथ जैन लिखने का अधिकारी है; लेकिन अफसोस इस बात का है कि हमारा समाज इन बातों को मानने को तैयार नहीं है। जो लोग अपने नाम के आगे 'जैन' लिखते हैं वे तो जैन रहे नहीं और अन्य जैनेतर लोग जो जैनधर्म पर श्रद्धा रखते हैं उन्हें हम 'जैन' मानने को तैयार नहीं हैं। इस प्रवृत्ति से जैन धर्मानुयायियों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है; फलस्वरूप जैनधर्म के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो गया है। अब हमारा इस संकुचित विचारधारा से मुक्त होना लगभग अनिवार्य हो गया है।

प्रश्न यह है कि जैनधर्म का अस्तित्व बनाये रखने के लिए आज हमारा नैतिक कर्तव्य क्या है? हमारे रचनात्मक कार्यक्रमों का स्वरूप कैसा हो? जैनधर्म में सम्यक्त्व के आठ अंगों की चर्चा है। उनमें से एक है प्रभावना। प्रभावना का अर्थ तो यह है कि हम जैनधर्म का अधिक-से-अधिक प्रचार-प्रसार करें ताकि जैनेतर जन उससे प्रभावित हो कर उसे मानने लगें; लेकिन शायद हमने रथ-यात्राओं, गजरथ-समारोहों आदि जलसों और जुलूसों को ही 'प्रभावना' मान लिया है। आज हमें इन सब प्रवृत्तियों का

(शेष पृष्ठ १७ पर)



नयन पथगामी भवतु मे

(महावीराष्टक का राजस्थानी-अनुवाद)

मूल—भागचन्द्रजी; अनु.—विपिन जारोली

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भान्ति ध्रौव्यद्वयजनिलसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्गं प्रकटनपरो भानुरिव यो
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

ज्युं दरपण में प्रतिबिम्बित व्है,
सामै पड़्या पदारथ सगळा।
त्युं झलकं चेतण में जिण रै,
त्रिविध रूप जड़-चेतन सगळा।
भूरज ज्युं सिव-पथ दरसावै,
तीनुं लोक करै उजियारो।
अस्या वीरजी नैण-पंथ सूँ-
हिवडै म्हारै आप पधारो ॥१॥

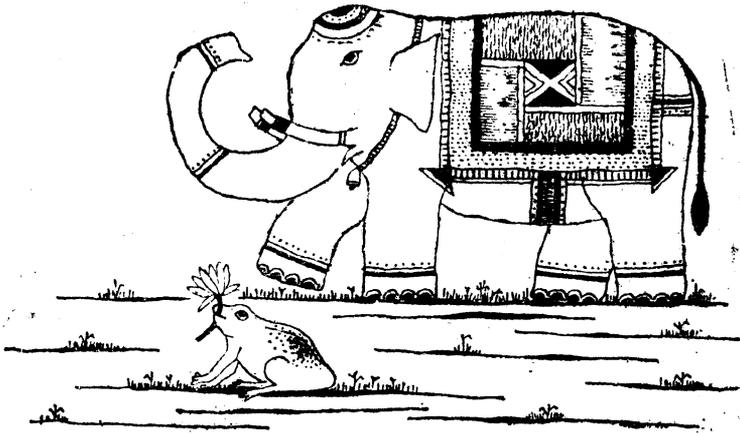
अतात्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्दरहितं
जनान्कोपापायं प्रकटयतिवाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

तात्र झलक नीं नैण-कमळ में,
पळक जपे नीं जिणरै दोई।
इण सूँ यूँ प्रकट आपड है
अन्तर में भी कोप न कोई।
अति निरमळ अर लाखीणो है
परम सांति रो वो उजियारो।
अस्या वीरजी नैण-पंथ सूँ-
हिवडै म्हारै आप पधारो ॥२॥

नमस्त्राकेन्द्राली मुकुटमणिभाजालजटिलम्
लसत्पादाभोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

नमता देवां रै मुगटारी-
मणियाँ, जिण रा चरण-प्रकासै।
अस्या नाथ रा उण चरणाँसूँ-
भवियाँ री भव-ज्वाला नासै।
चौरासी रै अंधकार पर-
मुगत-पंथ रो है उजियारो।
अस्या वीर जी नैण-पंथ सूँ-
हिवडै म्हारै आप पधारो ॥३॥

यदूर्चाभावेन प्रमुदितमना बर्दुर इह
क्षणादासीत्स्वर्गो गुणगणसमृद्धःसुख-निधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥



जिण रं सुमिरण सँ मेंडक भी-
सुख रो पावँ सुरग-खजानो ।
तो उणरी भगतिरा करण्यां,
क्यँ नीं पावँ सिव-सुख मानो ।
भगतां ने भगवान बणावँ,
जाणं है इणनं जग सारो ।
अस्या वीरजी नैण-पंथ सँ-
हिवडँ म्हारँ आप पधारो ॥४॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो
विचित्रात्माप्येको नृपतिवर सिद्धार्थतनयः ।
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरारोद्भुतगतिः
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

कुन्दण-सी दमकै काया, पण-
रंचमात्र नीं समता उण पर ।
अणजनम्यो, पण सिद्धारथ रो-
लाल अनोखो है वो जिनवर ।
ज्ञानी अर वीतरागी, ध्यानी,
समता वंभव रो उजियारो ।
अस्या वीर जी नैण-पंथ सँ-
हिवडँ म्हारँ आप पधारो ॥५॥

यदीयावाग्गंगा विविधनध कल्लोल विमला
वृहज्जानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बृधजनमरालः परिचिता
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

जिण री भांत-भांत री निरमळ-
नय-ल्हैरां री वाणी-गंगा ।
मंटे है चेतण-जल सँ वा
भवियां रं भव-भव रा दंगा ।
आकरषण वा आज तलक है,
अनगिणती रं बुध-हंसां रो ।
अस्या वीरजी नैण-पंथ सँ-
हिवडँ म्हारँ आप पधारो ॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्दप्रशमपदराज्याय स जिनः
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

जीत सके नीं जिण नै कोई,
तीन लोक है जिण रे वस में ।
अस्या दुरजयी कामदेव नै-
चढते जोबन कीधौ वस में ।

अरहत-पद पावन रै खातर—
कीधौ आतम जोत उजारो ।
अस्या वीरजी नैण-पंथ सूँ—
हिवडै म्हारै आप पधारो ॥७॥

महामोहातङ्कप्रशमनपराकस्मिक भिषङ्क
निरापेक्षो बन्धुविदितमहिमामंगलकरः ।
शरण्यः साधूनां भवभयभूतामुत्तमगुणो
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

बड़ो अपूरव वैदराज है,
मोह-रोग रै नासकरण रो
जिण रो जस गूँजे है जग में
सहैज ठिकाणो साध-सरण रो ।
पाप विनासी, सब ने व्हाळौ,
गैरो समदर गुण-रतनाँ रो ।
अस्या वीरजी नैण-पंथ सूँ—
हिवडै म्हारै आप पधारो ॥८॥

महावीराष्टकस्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम्
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥

भगतिरे वस अणीं स्तोत्र नै—
रच्यौ चाव सूँ भागचन्द्र है ।
वणीं तराँइ राजथली में—
रूप उतार्यो विपिनचन्द्र है ।
इणने भणै-सुणै जो चित लाई ।
पावै सिवपुर रो उजियारो ।
अस्या वीर जी नैण-पंथ सूँ—
हिवडै म्हारै आप पधारो ।

(पृष्ठ १४ का शेष)

सही और वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करना चाहिये
यह कि क्या वास्तव में इस तरह जैनधर्म
की प्रभावना हो रही है? असलियत तो
यह है कि हम इस प्रकार के कार्यक्रमों से
अपने नाम के साथ 'जैन' लिखने वालों को
तो प्रभावित कर नहीं पाते, फिर जैनेतरों

को क्या प्रभावित करेंगे ?

यदि हम जैनधर्म की सच्चे दिल से
प्रभावना चाहते हैं, तो हमें कुछ ठोस कार्य-
क्रम अमल में लाने होंगे । विभिन्न मेले-
तमाशों में फिजूलखर्ची रोक कर उस धन
का उपयोग हमें जैन ग्रन्थों के प्रकाशन में
करना होगा । इस साहित्य को, सम्भव हो
तो, निःशुल्क अन्यथा सस्ते मूल्य में उपलब्ध
कराना चाहिये । ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ खोली
जानी चाहिये, जिनमें बच्चों को जैनधर्म
की सरल और तर्कसंगत शिक्षा दी जा सके ।
आजकल जैन स्कूल/कॉलेजों में ऐसा नहीं
हो रहा है । आज हमारे अधिकतर विद्वान्
आर्थिक कठिनाइयों के शिकार हैं । जो लोग
जैनधर्म के लिए पूरी तरह समर्पित हैं क्या
उनके जीवन-न्यापन की समुचित व्यवस्था
हमें नहीं करनी चाहिये ?

इन सबके अतिरिक्त निम्न अपील
की भी आवश्यकता है : (१) अपने नाम
के साथ वे लोग ही 'जैन' लिखें, जो जैना-
चार का पालन करते हैं । जो लोग अपने
नाम के साथ 'जैन' लिखते हैं; लेकिन अण्डा,
मांस, या मदिरा का सेवन करते हैं वे 'जैन'
नहीं हैं । उन्हें अपने नाम के साथ 'जैन'
जोड़ने का कोई अधिकार नहीं है । उन्हें
चाहिये कि वे अपने नाम के पीछे से 'जैन'
शब्द अविलम्ब हटा लें ।

(२) जो भी व्यक्ति भगवान् महावीर
और उनके सिद्धान्तों में आस्था रखता है,
'जैन' है फिर चाहे वह किसी भी जाति या
वर्ण का हो ।

(३) 'जैन' कोई जाति नहीं है, जैन
धर्म है; अतः जैनों को एक जाति के रूप में
नहीं वरन् विभिन्न वर्णों तथा विभिन्न
जातियों के एक ऐसे स्वस्थ समुदाय के रूप
में लेना चाहिये जो जैनधर्म के तत्त्वदर्शन
तथा उसके आचरण-पक्ष में विश्वास रखते
हैं । □ □

तीर्थंकर : जुलाई ८६/१७

जीने की कला : दस चरण

क्षमा

जीव-मात्र के अन्तर्गत से
फूटे क्षमा-भाव का झरना ॥
वैर नहीं, बस मित्र-भाव हो
सीखें सब हिलमिल कर रहना ।

मादर्व

अहंकार हिंसा का कारण
बन्धन और पतन का साधन ।
अपने हाथों खोद-खोद कर
नाश करें क्यों जीवन-कानन ?

आर्जव

अगर बुलाना है वसन्त को
अपने जीवन के उपवन में
निश्छलता-ऋजुता का सौरभ
बरसाओ अपने जीवन में ।

शौच

मन का मल ही असली मल है
मन की शुचिता ही है शुचिता ।
जीवन-का-दर्पण तब चमके
जब मन का कर्दम है हटता ।

सत्य

बोलें सत्य, परन्तु सत्य में
मीठेपन का आकर्षण हो ।
ग्रहण करें हम सत्य वही नित
जिसमें गंभीत रस-सावन हो ।

संयम

सही दिशा में योजित कर लें
अपने सारे व्यवहारों को ।
फिर यह जीवन-रथ पकड़ेगा
अशुभ नहीं, शुभ की राहों को ।

तप

तप है जीवन का शुभ शोधन
परिष्कार का सच्चा साधन ।
अशुभ वृत्ति का करें निवारण
शुद्ध वृत्ति का हो संपादन ।

त्याग

त्याग समाधि, भोग व्याधि है
त्याग योग है, भोग रोग है ।
जकड़ भोग में झुलस रहे क्यों ?
भोग-मुक्त को, दुःख-वियोग है ।

आर्किचन्य

भोजन उतना ही लो भाई
उदर-पात्र में समा सके जो ।
ओढ़ो-पहनो कपड़ा उतना
नग्न देह को ढाँक सके जो ।

ब्रह्मचर्य

तेरा ब्रह्म समाया तुझमें
तू ही अपना ब्रह्मचर्य है ।
पाने उसको भटक रहा क्यों ?
खुद में चलना ब्रह्मचर्य है ।

मुनि चन्द्रप्रभसागर

१८/तीर्थंकर : जुलाई ८६

पुरुषार्थ यानी खुद की तथा दूसरों की सही समझ

पुरुषार्थ की गली सँकरी और मंजिल लम्बी है। मार्ग में अनेक आकर्षण-विकर्षण, विघ्न-बाधाएँ हैं। पुरुषार्थ-सिद्धि की यात्रा में ऐसे मौके भी आते हैं जब अगला कदम लक्ष्य पर पहुँचाने वाला लगता है, पर उसके विपरीत उस कदम के बीच की खाई प्रशान्त महासागर की अलंध्यता और अतलान्तिक की अतल गहराई बन जाती है। इसका कारण अपनी ही दृष्टि और समझ का दोष है, जिसकी वजह से वस्तुस्थिति का उथला रूप दिखने लगता है; इसलिए सही को गलत और गलत को सही मान लिया जाता है। वस्तुतः जिनकी आँख वेश अथवा लोक में न उलझ कर आगे निकल जाती है, पुरुषार्थ की सिद्धि उन्हें ही होती है।

—कन्हैयालाल सरावगी

‘पुरुषार्थ’ शब्द पुरुष और अर्थ के योग से बना है। पुरुष शब्द जीव (आत्मा) का बोधक है। यह पुरु + शेते से बना है अर्थात् पुर = उत्तम चैतन्य गुणामें, शेते = स्वामी हो कर जो प्रवृत्ति करता है अथवा अधिष्ठाता रूप से निवास करता है, उसकी संज्ञा है; पुरुष अथवा कहेँ दर्शन और ज्ञानरूप चेतना के नाथ को पुरुष कहते हैं। अर्थ, धन, प्रयोजन, शब्द का अभिप्राय (मापना), हेतु, निमित्त, उपलब्धि, कर्म, इष्ट, चतुर्वर्ग में-से एक, कुण्डली में दूसरा स्थान आदि समानार्थक शब्द हैं; अतः पुरुषार्थ का शब्दार्थ पुरुष का प्रयोजन अथवा इष्ट कर्म है।

पुरुषार्थ के परोक्ष और प्रत्यक्ष दो भेद हैं। धर्म, अर्थ और काम परोक्ष पुरुषार्थ हैं और मोक्ष या अपवर्ग प्रत्यक्ष पुरुषार्थ है। लोक में इन्द्रिय-प्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय को परोक्ष माना जाता है, पर विचार करने पर यह मान्यता निर्दोष नहीं लगती। इन्द्रियाँ देह से सम्बद्ध अथवा उसका अंग होने के कारण आत्मा से भिन्न अर्थात् ‘पर’ हैं और उनसे जो ज्ञान या क्रिया होती है, वह आत्मा की वस्तु नहीं होने के कारण परकीय होती है। इसके विपरीत जो स्थिति, उपलब्धि आदि नितान्त आत्मा की होती हैं, वे निरपेक्ष रूप से आत्मा के सम्बेदन में आने के कारण प्रत्यक्ष अर्थात् आत्म-प्रत्यक्ष हैं; अतः धर्म, अर्थ और काम इन्द्रिय अथवा देह धर्मा होने के कारण परोक्ष पुरुषार्थ हैं और मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, सिद्धत्व, ब्राह्मी स्थिति आदि (ये सभी एकार्थक हैं) प्रत्यक्ष पुरुषार्थ हैं। परोक्ष को लोकार्थ और प्रत्यक्ष को परमार्थ रूप में भी व्याख्यायित कर सकते हैं।

पुरुषार्थ की गली सँकरी और मंजिल लम्बी है। मार्ग में अनेक आकर्षण-विकर्षण, विघ्न, कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) के अगणित पड़ाव, अवरोध आदि हैं। पुरुषार्थ-सिद्धि की यात्रा में ऐसे भी अवसर आते हैं, जब अगला कदम लक्ष्य पर

पहुँचाने वाला लगता है, पर उसके विपरीत उस क्रम के बीच की खाई प्रशान्त महासागर की अलंघ्यता और अतलान्तक की अतल गहराई बन जाती है। इसका कारण अपनी ही दृष्टि और समझ का दोष है, जिसके कारण वस्तुस्थिति का उथला रूप दिखने लगता है; इसलिए सुन्दरता को कुरूपता और कुरूपता को सुन्दरता मान लिया जाता है। वस्तु के सही रूप को पहिचानने वाले सम्यग्दृष्टियों के लिए तृवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) और अपवर्ग हस्तामलकवत् हो जाते हैं। जिनकी दृष्टि वेश अथवा लोक में ही उलझी रहती है, उन्हें कोई भी पुरुषार्थ शुद्ध रूप में प्राप्त होना सम्भव नहीं होता।

धर्म, अर्थ और काम को इस युग ने खूब पकड़ा है, भले वह पुरुषार्थ का उथला रूप या सुन्दरता के आवरण में कुरूपता ही हो। कहा जाता है कि, 'सुत. दारा अरु लक्ष्मी, पापी हू के होत', पर. देखा जाता है कि वे अशान्ति के ही कारण होते हैं। जब से इतिहास मिलता है, तभी से इन्हीं तीनों के नाम पर विश्व में अकूत खून बहाया जाता रहा है। मनुष्य ने तीन बातों के लिए अपना एकाधिकार मान लिया है— (१) लोगों को धार्मिक बनाने की योग्यता; (२) लोक-हित और सेवा के लिए अथवा उनकी आड़ में परिग्रहों का संचय, और (३) नारी को काम-भोग-मात्र की वस्तु मानना। मनुष्य की वर्तमान प्रवृत्तियों, परिणतियों, झुकावों आदि को देखते वर्तमान में मोक्ष (अपवर्ग) केवल कोश का शब्द मात्र ठहरता है, उससे दूर का भी नाता नहीं जुड़ पाता। आज न तो उसकी कोई कल्पना रह गयी है और न उसके प्रति अध्यवसाय रह गया है। वाचकता के तल पर सभी उसी की चर्चा करते पाये जाते हैं। जिसे दो शब्दों का ज्ञान और कहने की कला प्राप्त हो गयी है, वह ब्रह्मज्ञान की ही बातें करता है और इस प्रकार दूसरों को भ्रमित करने के उपक्रम में स्वयं को ही उगता है।

आज तक संसार में जितने क्षेत्रीय या विश्व-युद्ध हुए हैं, उनकी जड़ में इन तीनों तथाकथित पुरुषार्थों में से कोई एक, दो या तीनों अवश्य रहे हैं। भरत-बाहुवली, राम-रावण, या कौरव-पाण्डवों के युद्ध अथवा शतवार्षिक क्रूसेड (ईसाइयों और मुसलमानों के बीच सौ वर्षों तक यूरोप में चलने वाला धर्म-युद्ध) और दो विश्व-महायुद्ध, कोरिया, विएतनाम, ईराक, ईरान, अरब, इसराइल, अफ्रीकी देशों का श्वेत-अश्वेतों के युद्ध, सबका आधार मनुष्य का उक्त तीन में-से जन्मा उन्माद ही है। वर्तमान में विश्व में जो शीतयुद्ध चल रहा है, वह भी इन्हीं के कारणों से है और इन्हींने विश्व को विनाश के कगार पर ला कर खड़ा कर दिया है।

मनुष्य की स्वार्थमूलक बौद्धिकता, लोलुपता और गृद्धता ने पुरुषार्थ को भी विकृत कर उसे निम्नतम श्रेणी का दूषित और घृणित बना दिया है। परम अहिंसा-

वादी, सहअस्तित्ववादी और सम्बिभागवादी तीर्थकरों, बुद्ध और ईसा के वंशजों, अनुयायियों को जाने क्या हो गया है? वे ढोल तो शान्ति का पीटते हैं, पर भयंकर-तम हिंसोन्माद में जी रहे हैं। वे मानसिक तनावों और मूर्च्छा की स्थिति में हैं। अभ्युदय और निश्चय की सिद्धि कराने वाले धर्म को भी धूर्तों ने अशान्ति और विद्वेष का हेतु बना दिया है। धर्म चोरी, हिंसा, झूठ, व्यभिचार, अनावश्यक संग्रह आदि को प्रोत्साहित नहीं करता। धर्म आत्मा का विषय है और आत्मा का स्वरूप दर्शन-ज्ञानगुणमय चेतना है, उसका स्वभाव स्व-पर हितैषी, शान्त और स्वयं में पूर्ण है। वस्तु के स्वभाव को भी धर्म कहते हैं। चलने अथवा कर्हें प्रगति में सहायक द्रव्य को भी धर्म कहते हैं। जीवन प्रणाली के रूप में भी इसे व्याख्यायित किया गया है। इस प्रकार धर्म की जितनी परिभाषाएँ अथवा व्यवस्थाएँ हैं, वे सब एक ही उद्देश्य 'आत्महित' की ओर संकेत करती हैं।

आम्नायों के उन्मादी लोग परस्पर में भेद पैदा कर देते हैं और अपने धर्म-विशेष को सर्वोत्तम और दूसरों को गलत बताते हुए उनके अनुयायियों को मिथ्यात्वी, नास्तिक, काफिर, अविश्वासी आदि कहते हुए विवादों और असहिष्णुता को उभारते हैं और संसार का अधिक अहित करते हैं। अपने को सर्वथा सही मानने से बड़ा अज्ञान सम्भवतः दूसरा नहीं है। सभी धर्ममत्तों में अच्छाइयाँ हैं, सम्भव है सब सर्वांशतः सही न भी हों, ऐसे में श्रेष्ठता का अभिमान हीनवृत्ति का द्योतक है। दूसरों के विचार, धर्म, कर्म आदि की सहिष्णुता, समादर अथवा अवरोध से पारस्परिक विवाद मिट कर सहअस्तित्व की स्थापना हो सकती है।

अर्थ हित का हेतु होने के बदले अनर्थों की जड़ बन गया है। कभी यह उपकार, दान, सहायता, सेवा आदि का साधन था, पर आज वह शोषण, उत्पीड़न का जानलेवा हथियार बन गया है। मनुष्य अर्थ के लिए जी रहा है और उसके लिए न्याय-अन्याय सब करता रहता है। भाई का धन हड़पता है, माता-पिता को वंचित करता है, मित्र को धोखा देता है, राष्ट्र से द्रोह करता है और भी मिलावट, तस्करी आदि जाने कितने निम्नतम कार्य करता है। महाभारतकार ने ठीक ही कहा है कि, 'पुरुष ही अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं है।

कामानल से बढ़ कर दाहकता किसी दूसरी आग में नहीं है। मनुष्य की कौन कहे, ब्रह्मादि इन्द्र-पर्यन्त देव भी काम के वश में हैं। विद्वान् कवि दानतराय ने कहा है कि काम रोग से पीड़ित लोग नारी के अपवित्र देह-भोग में उसी तरह आसक्त रहा करते हैं, जैसे श्मशान में सड़े मुर्दे में कौवे आसक्त रहते हैं। बड़े शूरमा, शास्त्रज्ञ, विद्वान्, साधक और तपस्वी भी स्त्री के सामने कायर हो जाते हैं। कहा है—'काम-भील भवसिधु में, वंशी नारी डारि; मीन नरन को गहि पचत प्रेम अग्नि को बारि। कामजनित कारणों से जिसका संहार, उत्पीड़न और वैर-विरोध

हुआ है उसका हिसाब लगाना सहज सम्भव नहीं है। नित्य ही अखबारों में बलात्कार हिंसा, आत्महत्या आदि के समाचार पढ़ने में आते हैं। इसका कारण मनुष्य की उच्छृंखल और कलुषित मानसिकता है। सारांश यह कि धर्म अपने मौलिक अर्थ और मूल्यों को खो कर खेमों में बैठा क्रियाकाण्ड मात्र रह गया है। अर्थ शीषण और उत्पीड़न की शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है और काम नर-नारियों की दुर्गंधपूर्ण और मर्यादाहीन पाशविक वासना मात्र रह गया है।

भगवान् महावीर के पूर्ववर्ती समय में भी मनुष्य के आचार, विचार, आहार, पूजा, उपासना आदि पर प्रश्न-चिह्न लग गये थे। जन-मानस में भोगोपभोगों की लालसा बढ़ गयी थी और सुरा-सुन्दरी में समाज आपाद मस्तक डूबा हुआ था। धर्म पुरुषार्थ की ओट में हिंसा और अनैतिकता अबाध चलने लगी थीं। नारी को भोग्या के तल पर उतार दिया गया था, सुन्दरियों को ज़बर्दस्ती नगरवधू (गणिका) बना दिया जाता था। वैशाली की आम्रपाली आदि नगरवधुएँ इसकी ज्वलंत उदाहरण हैं। तत्कालीन परिस्थितियाँ राजनैतिक स्थिरता को भी खण्डित कर रही थीं। इन सबके कारण आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी तलों पर जनमानस ऊब और घुटन का अनुभव कर रहा था।

इस विषम काल में महावीर स्वामी आत्मानुशासन, त्याग, तितिक्षा, मैत्री, प्रमोद, माध्यस्थ्य और करुणा का संदेश ले कर आध्यात्मिक और सामाजिक क्षितिज पर एक प्रकाशमान नक्षत्र बन कर उभरे। उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, भोगादि के विरुद्ध क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, निर्भयता और ब्रह्मचर्य का अभेद्य कवच धारण किया और अपना संदेश तत्कालीन लोक-भाषा में दिया। उन्होंने जो कुछ कहा, वह उनके आचरण में प्रदर्शित था, इसीलिए वह अमोघ सिद्ध हुआ। उन्होंने नारियों और हीनदृष्टि से देखी जाने वाली जन-जातियों के लोगों को भी धर्मसाधना में समान स्थान दिलाया और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ायी।

आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण क्षेत्रीय दूरियाँ घट गयी हैं, अंतरिक्ष में भी मनुष्य की पहुँच हो गयी है। भौतिक साधन उसके पाँव पलोट रहे हैं, यांत्रिक मस्तिष्क (कम्प्यूटर) बन गये हैं, प्रकृति पर विजय के और भी साधनों में पर्याप्त प्रगति हुई है; परन्तु नैतिक तल पर मनुष्य में गिरावट आयी है और उसकी उपलब्धियाँ अधिकांश ध्वंसात्मक बन गयी हैं। मनुष्य की इस चारित्रिक गिरावट के प्रति अब घुटन-सी होने लगी है। चारों ओर भय-असुरक्षा और अनिश्चय का वातावरण व्याप्त है। मनुष्य एक-दूसरे से भयभीत है, परम्परा में अविश्वास व्याप्त हो गया है। परिवार टूट रहे हैं, समाज खण्डित हो रहा है, राष्ट्र में अलगाववादी तत्त्व उभर रहे हैं; हत्या, बलात्कार घूसखोरी आदि घृणित कार्यों का बोलबाला है।

खान-पान की शुद्धता नष्ट हो जाने पर मन, वाणी और कर्म के विकारों को नहीं रोका जा सकता। मनुष्य दूध, अन्न और शाक का आहार करने वाला है; किन्तु कहीं संगति, कहीं परिस्थिति, कहीं जीभ की लोलुपता और कहीं आधुनिकता या प्रगतिशीलता के प्रलोभन, आकर्षण और धुन ने उसे मांसाहारी, मद्यपायी और अनेक मादक (नशीली) वस्तुओं का आदी बना दिया है। इससे चरित्रहीनता को प्रश्रय मिला है। चरित्र के इस गिरते स्तर को रोकने के लिए निम्नलिखित कुछ कार्य उपयोगी हो सकते हैं—

(१) धर्म की वैज्ञानिक शिक्षाओं (सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) का व्यापक प्रचार-प्रसार करना; (२) 'चैरिटी बिगिन्स एट होम' की कहावत के अनुसार इन शिक्षाओं को स्वयं ग्रहण करना और अपने परिवार को धारण कराना; (३) धर्म के सम्बन्ध में लोक में जो भ्रान्तियाँ पनप गयी हैं, उन्हें हटाना और लोगों में धर्म के प्रति आस्था और आदर उत्पन्न करना; (४) धर्म में जो प्रयोजनहीन आगन्तुक क्रियाकाण्ड आ गये हैं, उन्हें दूर कर उसे (धर्म को) अपने तर्क और न्यायसंगत मौलिक रूप में प्रस्तुत/प्रतिष्ठित करना; (५) धर्म का वर्तमान में जो औपचारिक रूप बन गया है, उसके बदले उसे सरल, सुबोध और आचरणीय बनाना; (६) धर्म में अन्धविश्वास, शकुन, चमत्कार आदि जो बातें घुस आयी हैं, उन्हें निकालना; (७) हिंसादि पाँच पापों और सात व्यसनों से स्वयं विरत रहते हुए दूसरों को भी उनसे हटने की प्रेरणा देना (यह कार्य विधेयकों, दण्ड-प्रक्रियाओं अथवा बल-प्रयोगों से नहीं हो सकता, उनके लिए हृदय-परिवर्तन करना-कराना आवश्यक है); (८) जन-स्वास्थ्य, पर्यावरण-शुद्धि और अन्य लाभों के लिए अपने अड़ोस-पड़ोस की सफाई करना और वृक्षादि की रक्षा करना; (९) बहुत से जीव मनुष्य के प्रत्यक्ष अथवा हितैषी हैं, उन्हें जान-समझ कर उनकी रक्षा करना; (१०) कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, अरति आदि) से विरत होना/कराना; (११) श्रावकाचार के नियमानुसार खान-पान, हाथ (कर्म), जीभ, इन्द्रियों और उनके कार्यों की शुद्धि रखना।

यह कार्य लिखने अथवा कहने जैसा सरल नहीं है। इसके लिए समर्पित जीवन चाहिये। विश्व को पुनः महावीर, बुद्ध, ईसा, गाँधी जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो अपनी लालसाओं, एषणाओं, कामादि विकारों, खान-पान की गृद्धता आदि को संयमित कर त्याग, तपस्या, सही दृष्टि, ज्ञान और आचरण के द्वारा उसका (जगत्का) मार्गदर्शन, संचालन, नेतृत्व, निदेशन, आदि कर सके; तभी धर्मादि पुरुषार्थों की साधना हो कर विश्व में नैतिकता तथा शान्ति स्थापित होगी एवं भय, उत्पीड़न, दुःख आदि से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। □ □

रेशम : खून से लथपथ हैं आप

रेशम—

शायद आप न जानते हों फारसी भाषा के 'अबरेशम' शब्द का संक्षिप्त

रूप है, जिसका कोशगत अर्थ है एक क्रिस्म का महीन चमकीला तंतु/रेशा जो कोये में रहने वाले एक क्रिस्म के कीड़े द्वारा काता जाता है।

'अब रेशम' मूलतः कच्चे रेशुम या रेशम-कीट के कोये (कोकून) को कहते हैं अंग्रेजी में रेशम के लिए 'सिल्क' शब्द काम में आता है, जो एंग्लोसक्सन 'सेओलक' का विकसित रूप है।

रेशम एक सुन्दर चिकने चमकीले रेशे को कहते हैं, जिसे रेशम-का-कीड़ा अपना कवच (कोकून) बनाने के लिए कातता है। कातने की उसकी यह क्रिया चमत्कारिक होती है। अपनी पूरी जिन्दगी में वह मील-डेढ़-मील लम्बा अटूट रेशा कातता है।

रेशम-कीट का अपना जीवन-चक्र है। पहले यह एक बहुत सूक्ष्म अण्डे के रूप में अस्तित्व में आता है इतना महीन कि आप-हम ठीक-से उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। एक वर्गसेंटीमीटर जितनी मामूली जगह में उसके सैकड़ों अण्डे आ सकते हैं। इन अण्डों को शहतूत के पत्तों पर पाला-पनपाया जाता है। यह कालक्रम में क्रिसालिस के रूप में एक कोये में विकसित होने लगती है (दे. चित्र)।

कोकून (कोया) रेशम-कीट का नीड़ निलय, या

दुर्ग होता है जिसे वह कातता/बनाता है आत्मरक्षा के लिए, किन्तु वही आगे चल कर उसके लिए जानलेवा सिद्ध होता है।

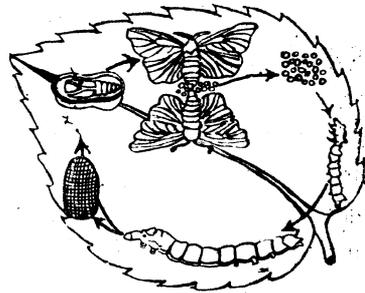
आम आदमी यह नहीं जानता कि रेशम का उत्पादन किस तरह से होता है; मान कर चलता है वह कि यह महीन मनमोहक, खूबसूरत तागा कपास की तरह ही किसी पोथे से उत्पन्न होता होगा; किन्तु बात कुछ और ही है, जो प्रायः उससे छपी रहती है।

आप जिस रेशम का इस्तेमाल करते हैं उसके एक ग्राम में पचपन रेशम-कीटों की जानें जाती हैं।

लगभग ४५४ ग्राम रेशम तैयार करने में लगभग २५००० रेशम-कीटों के प्राण जाते हैं।

रेशम जिस बेरहमी के साथ तैयार होता है उसे देखना स्वयं-में बहुत बड़े साहस और कलेजे का काम है। हमारे वे जैन भाई-बहिन जो रेशम का उपयोग करते हैं

नहीं जानते कि, रेशम के रूमाल, उसकी साड़ियाँ, उसके पर्दे, उसके शास्त्र-वेष्टन,



उसके लिहाफ और मेञ्चपोश, उसके बने वे चँदोवे, जिन्हें मुनिराजों को आहार देते वक्त उनके ऊपर ताना जाता है कितनी हिंसा के बाद बनते हैं ?

बहुत से साधु अपनी किताबों की रेशमी जिल्दें पसंद करते हैं; किन्तु शायद नहीं जानते वे कि जिल्द-में काम आने वाला रेशमी कपड़ा जो अहिंसा की सूक्ष्मतम विवेचना करने वाली उनकी किताबों को मनमोहकता प्रदान करता है कितने रेशम-कीटों को भाफ या खौलते हुए पानी में मार कर बनाया जाता है ! यही हाल प्लास्टिक, टैरैलिन, पोलिथीन आदि का है जिनके मलवे से सैकड़ों एकड़ ज़मीन बंजड़ हो जाती है हज़ारों-हज़ार मछलियों और जलचरों की जानें चली जाती हैं ।

कर्नाटक में बैंगलौर/मैसूर के बहुत सारे जैन जिन्हें इन पक्तियों का लेखक बहुत नज़दीक से जानता है, रेशम के दिग्गज व्यापारी हैं, जिनकी जैन साधुओं में - जैन समाज में इसलिए भारी इज्जत है चूँकि वे दान में बड़ी-बड़ी रकमें देते हैं और वाहवाही कमाते हैं ।

भगवान् महावीर ने बिना किसी लिहाज़ के साफ-साफ कहा है कि न सिर्फ हमारा साध्य पवित्र हो बल्कि हमारे-साधन भी पूरी तरह पवित्र हों सोचें, धर्म के कामों में आज जो पैसा खर्च हो रहा है वह कहाँ से आ रहा है ? है किसी साधु या श्रावक को इसकी फ़िक्र ? शायद नहीं; क्यों नहीं, कदाचित् इसके सैकड़ों फिज़ूल तर्क हैं; किन्तु नेता वह है जो वक्त को और अपनी समकालीन बुराइयों और

अपावनाताओं को चुनौती देता है— उनसे जूझता है ।

(कसैं इस कसौटी पर अपने तथाकथित नेताओं को; डालें इस तेज़ाब में क्षण-भर को उनके व्यक्तित्व को) ।

पाटण (उत्तर गुजरात) में एक साल्वी जैन परिवार है, जिसके पुरखों को गुजरात के चालुक्यवंशी राजा कुमारपाल ने बारहवीं सदी में दक्षिण से बुलवाया था । इतिहास में दर्ज है कि कुमारपाल कट्टर जैन था और जैनाचार्य हेमचन्द्र का आश्रयदाता था । दक्षिण के ये ७०० साल्वी पटोला-शिल्पी थे ।

पटोला (पटोरा) रेशमी साड़ी को कहते हैं । पाटण का यह साल्वी जैन परिवार हिन्दुस्तान का नामी रेशम-बुनकर है । उत्तर गुजरात के ये रेशम-बुनकर बंधानी-प्रक्रिया से रेशम की बेहद खूबसूरत/नयनाभिराम साड़ियाँ बुनते-बनाते हैं । ये जिस रेशम का उपयोग करते हैं, वह ~~मैसूर~~ से आता है ।

ये पटोला-जुड़ाहे जैन हैं । पटोरा के विशेषज्ञ हैं । मजों यह है कि बंधान में ये जिन रेशम का उपयोग करते हैं वे सारे वर्ण शाकफरक हैं, यानी वनस्पतियों से बनाये जाते हैं; किन्तु साड़ियाँ तो रेशम-कीट के कोयों से बनती हैं ?

एक पटोला पाँच से आठ गज़ लम्बा और सवा से डेढ़ गज़ चौड़ा होता है; जिसमें हज़ारों-हज़ार रेशम-कीटों की जानें बुनी रहती हैं !! ये पटोले विदेशों में बहुत मशहूर हैं । वहाँ इनकी काफी खपत है । मुश्किल यह है कि पटोलावाला परिवार जैन है और यही एकमात्र एक ऐसा कुटुम्ब है जो इस उद्योग को बचाये हुए है ।

सहज सवाल है कि क्या बारहवीं सदी में जैनधर्मानुयायी कुमारपाल ने इन हिंसक शिल्पियों को आमंत्रित किया था, या तब रेशम का उत्पादन अहिंसक तौर-तरीकों से होता था ?

आज रेशम-उत्पादन की तकनीक में काफी प्रगति हुई है। संपूर्ण प्रक्रिया यन्त्रीकृत है। रेशम के कोकून, जिन्हें रेशमी इल्लियाँ कातती हैं और जिनमें पलने वाला प्यूपा, जो आगे चल कर एक वयस्क इल्ली का रूप ग्रहण कर लेता है, उसे यानी जिस कोकून को वह कातता है भाफ या खौलते पानी में एक खास तापमान पर उबाल लिया जाता है ताकि वह मर जाए और रेशम का रेशा अटूट बना रहे।

याद रहे, एक कोकून में से ५५० से १३०० मीटर तक का लम्बा अटूट/दृढ़ रेशा प्राप्त होता है अर्थात् एक कोये या कोकून में से आधा किलोमीटर से सवा किलोमीटर तक लम्बा महीन रेशमी तागा/सूत मिल जाता है।

कोकून की कई जातियाँ हैं।

रेशम की भी कई किस्में हैं।

कोश-कीट-पालन या रेशम-उत्पादन (सेरी-कल्चर) का आज काफी विकास हो चुका है; जिसके अन्तर्गत प्यूपा को इस तरह उबाला जाता है कि रेशम-का-तागा अक्षत और खूबसूरत बना रहे।

मनुष्य अपने शौक के लिए जीववध की पूरी तैयारी रखता है; किन्तु बदकिस्मती यह है कि आज जैन भी इस तरह के रेशमी ऋत्नखानों में भागीदार हैं।

रेशम की प्रमुख किस्में हैं—

शहतूती, कोसा (टसर/वाइल्ड सिल्क) अरंडी, और

मूंगा। इनमें से अरंडी किस्म अहिंसक होती है। भारत में पहले इसी रेशम

का उत्पादन होता था ? अरंड वृक्ष के पत्तों पर रेशम की इल्लियाँ कोये कातती थीं और प्रौढ़ होने पर उन्हें छोड़ कर चली जाती थीं। इन छोड़े हुए कोकूनों से रेशमी तागा तैयार होता था और फिर रेशम की लच्छियाँ बनायी जाती थीं। आज भी कई आदिवासी इस प्रक्रिया का उपयोग करते हैं; किन्तु सरकार उन्हें नयी तकनीक सिखा रही है और प्यूपा को मार कर कोये प्राप्त करने के लिए कह रही है।

मूंगा रेशम सिर्फ असम में होता है। यह दुर्लभ किस्म का रेशम है, जो सिर्फ असम की माँग ही पूरी कर पाता है। यह बहुत महंगा पड़ता है। मूंगा रेशम काफी मजबूत और सुनहली ललाई लिये होता है यह भी होता हिंसक ही है; किन्तु ज्यादातर शहतूती रेशम ही काम में आता है। हिंसा की यह मिहरबानी विदेशों की है, जो अब हमारे देश में काफी लोकप्रिय हो गयी है; किन्तु प्रश्न लोकप्रियता का नहीं है, असली सवाल है हमारे देश की अहिंसक संस्कृति से इसके सामंजस्य का। वस्तुतः रेशम का हमारी अहिंसक कृषि-संस्कृति से कोई तालमेल नहीं है। आज जो तामसिकता और खूनखराबा चारों ओर दिखायी दे रहा है उसकी पृष्ठभूमि पर हमारा हिंसक खानपान और पहिराव है।

रेशम अस्तित्व में कैसे आया, इसे ले कर एक किस्सा है।

रेशम भारत-जैसे अहिंसक देश की देन नहीं है अण्डा भी इस देश की देन नहीं है। अण्डे हमारे यहाँ होते थे/होते हैं/होते रहेंगे; किन्तु खाने के लिए नहीं—वह सब प्रकृति की लीला है, उसकी प्रक्रिया है, उसमें दखलन्दाजी के जो परिणाम हो सकते हैं, वे सामने आने लगे हैं। जब हम एक प्राकृतिक जीवन जी रहे थे तब समृद्ध थे,

आज जब कृत्रिम जिन्दगी जी रहे हैं अशान्त और संव्रस्त हैं ।

कहा जाता है कि एक बार चीन की रानी सीलिंग-ची कोकून की माला पहिने थी । कोकून वैसे बहुत खूबसूरत और हल्के होते हैं, जिनके बीच से सूत्र पिरो कर माला बनायी जाती है । तो जब चीन की रानी उबलती चाय अपने प्याले में ऊँड़ेल रही थी तब उसकी माला के कुछ कोकून उसमें सहसा डूब गये । रानी ने देखा कि इन कोयों में से एक स्निग्ध/अटूट/खूबसूरत रेशा निकल रहा है । वह स्तब्ध रह गयी । रुकी । उसने उन्हें गौर से देखा । रेशा मजबूत था । कोमल था । महीन था । सुन्दर था । उसने उसकी खेती शुरू की । यह घटना आज से चार हजार वर्ष पुरानी है ।

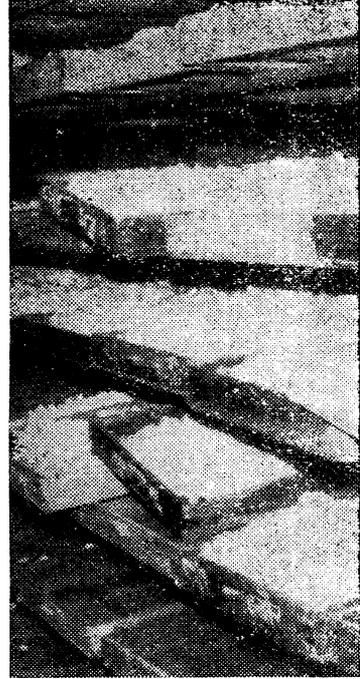
रेशम प्राचीन काल में काफी महँगा था । इसे 'जितना रेशम, उतना सोना' के हिसाब से बेचा-खरीदा जाता था ।

माना जाता है कि रेशम का उत्पादन सिमिली (इटली) में बारहवीं सदी में होता था,

जहाँ से धीरे-धीरे यह स्पेन और फ्रान्स में फैल गया ।

ल्योन्स (फ्रान्स) में १४५० ई. से अब तक इसका उत्पादन निरन्तर हो रहा है । इंग्लैंड में १६०४ ई. से पूर्व यह अस्तित्व में नहीं था; १६८८ में जब फ्रान्स के शरणार्थी इंग्लैंड आये तब उन्होंने स्पिताफील्ड्स में इस उद्योग को तरजीह दी । आज जापान, चीन, इटली, कोरिया, और रूस रेशम के प्रमुख उत्पादक मुल्क माने जाते हैं ।

यह हुई रेशम की तवारीख उसकी विकास-कथा



कोकून : जिनसे बनते हैं रेशमी वस्त्र

अब हम यह देखें कि इसका हिंसा/अहिंसा से क्या रिश्ता है ?

साफ है : बॉम्बिक्स मोरी जाति के लार्वा (डिम्ब) से रेशम का रेशा बनता है । पहले इसके छोटे-छोटे अंडों को संचित किया जाता है, या उनकी कृषि की जाती है (आजकल यही शब्द काम में आता है); फिर इन अंडों को शहतूत वृक्ष के पत्तों पर, जिसे मेजमान वृक्ष कहा जाता है, रखा जाता है । शहतूत के वृक्ष इस इल्ली के लिए बहुत अनुकूल सिद्ध हुए हैं ।

व्यापारिक या वाणिज्यिक रेशम शहतूत पर ही तैयार किया जाता है । इस लेख के साथ दिये गये शहतूत के पत्ते पर रेशमकीट का संपूर्ण

जीवन-चक्र दिया गया है।

पहले अण्डे और फिर लार्वा/छोटी इल्ली उत्पादित होते हैं। अण्डे बहुत छोटे होते हैं।

रेशम का कीड़ा रीढ़-रहित कीट (इन्वर्टेब्रेट)

की श्रेणी में आता है। इसका ग्रीक नाम 'बॉम्बिक्स मोरी/मोराइ' है। बॉम्बिक्स जीनस (वंश) है और मोराइ स्पीशी (जाति) है। अंग्रेजी में इसे 'सिल्कमॉथ' कहते

हैं। हिन्दी में इसे 'रेशम-कीट' कहा जाता है। यह मक्खनिया श्वेत रंग का होता है। इसके पंख ४०-५० मिलीमीटर लम्बे होते हैं। यह काफी हट्टा-कट्टा होता है। इसका मुख-भाग चूसने का आदी सोता है। जब यह विश्राम की मुद्रा में होता है, इसके पंख पीछे की ओर सिमिट जाते हैं। इसके एंटीना (श्रृंगिका/फीलर) रोएँदार होते हैं - अत्यन्त संवेदनशील।

मादाकीट लगभग ३०० अंडे देती है; जो सूक्ष्म, स्निग्ध, और पिलांस लिये होते हैं; किन्तु इसका भ्रूण जैसे-जैसे बढ़ता है उसका वर्ण गहरा पीला होता जाता है।

अंडों में-से इल्लियाँ निकलती हैं, जिन्हें शहतूत के पत्तों पर पाला जाता है। ४५-५५ मिलीमीटर लम्बी ये इल्लियाँ खुरदरी और शिकनदार होती हैं। ये ४५ दिनों में बढ़ जाती हैं। भ्रूण/प्यूपा एक मोटे कोकून (कोये) में विकसित होने लगता है। १२ से १६ दिनों में प्यूपा व्यस्क इल्ली में विकसित हो जाता है। एरंड में तो यह कोया छोड़ कर भाग निकलता है; किन्तु वाणिज्यिक दृष्टि से प्यूपा-सहित कोकून को भाफ, उबलते पानी या बंद चूल्हे में एक विशेष तापमान पर उबाला या रखा जाता है और नष्ट कर दिया जाता है।

इस प्रक्रिया के बाद कोकूनों की छटनी की जाती है। छटे हुए कोकून के तागों को बॉबिनों (फिरकियों) में लपेट लिया जाता है।

मध्यप्रदेश में टसर (वन्य रेशम) का काफी बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है।

बस्तर के आदिवासी इसका उत्पादन करते हैं। भारत में जितना कोसा/टसर तैयार होता है उसका पचास प्रतिशत बस्तर में पैदा होता है। जापान और चीन के टसर की अपेक्षा भारत का टसर अधिक अच्छा माना जाता है। बस्तर के आदिवासी रेशम-केन्द्रों को कोकून उपलब्ध कराते हैं। कहा जाता है कि बस्तर के कोकूनों में-से एक मील लम्बा रेशमी रेशा निकल आता है। शहतूत और एरंड के वृक्ष रेशम-कीट के मेजमान वृक्ष माने जाते हैं।

देखा, शाकाहारियों की कैसी दुर्गति होती है!!!

आइये अब हम कोकून (कोया) की बनावट को समझने का प्रयत्न करें।

कोकून फ्रेंच शब्द 'कोकोन' से बना है, जिसका अर्थ है: अंडे का घोंघा या आच्छादन। इसे हम 'रेशमीपेट्टी' कह सकते हैं, जिसे

लार्वा से विकसित प्यूपा इस तरह कातता है कि वह उसकी सुरक्षा के लिए एक दुर्ग का काम दे सके।

वस्तुतः यह एक रेशम के तागे का खूबसूरत किला होता है, जिसे प्यूपा (अधपका रेशम-कीट) प्राण-रक्षा के लिए बनाता है, किन्तु अन्ततः जो उसी के लिए प्राणान्तक साबित होता है।

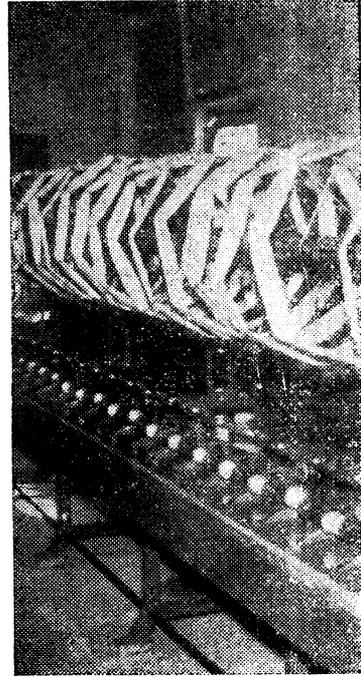
रेशम बहुत महीन, मसृण, चमकदार रेशा होता है, जिसे प्यूपा कोकून की रचना के लिए कातता है।

प्यूपा — रेशमकीट की पूर्वावस्था — दो बड़ी ग्रन्थियों (ग्लैंड्स) से रेशा खींचता है, जिसमें विस्कासी (लसदार तत्त्व) रहता है, जो उसके शरीर के दोनों बाजू से फैलता हुआ मुख पर कत कर तैयार हो जाता है। दूसरे शब्दों में रेशमकीट का प्यूपा कतवैद्य की भूमिका अदा करता है। प्यूपा द्वारा कता हुआ रेशा कोकून बनाता है जो कवच की भाँति काम करता है।

जिस तरह बया पक्षी अपनी रक्षा के लिए तिनकों से घोंसला बनाता है ठीक ऐसे ही प्यूपा अपनी रक्षा के लिए ग्रन्थियों से उत्पादित लसीका से कोया तैयार करता है; आदमी किन्तु उसके इस किले को तोड़ डालता है उस पर हमला करता है उसे मार डालता है और कभी इन किलों की माला बनाता है तो कभी वस्त्र।

माना गया है कि सूती वस्त्र के मुकाबले सुविधाजनक, आरामदेह, स्वास्थ्यप्रद कोई और वस्त्र नहीं है, इसीलिए अब लोग पश्चिम तक के — कृत्रिम रेशों से बने वस्त्र छोड़ कर सूती वस्त्रों की ओर लौटने लगे हैं।

जब आदमी जंगली था तब चर्म पहिनता था। वह सभ्य हुआ। उसने खेती सीखी। वह अहिंसक बना; किन्तु जैसे-जैसे वह अधिक सभ्य होने लगा हिंसा की ओर लौट आया। उसके सिर पर फैशन का भूत सवार हुआ और वह रोएँदार चर्मवाले पशुओं को मारने लगा। कइयों की तो उसने नस्ल ही समाप्त कर दी। अब वह चिन्तित है और उन्हें बचाने की ओर दौड़ रहा है। रेशम भी उसकी क्रूर लिप्सा और हिंसक शीक का दुष्परिणाम है।



25000 कोकून = 454 ग्राम रेशम

प्यूपा/रेशम-कीट बिल्कुल बेकुसूर है। वह प्रकृतिपुत्र है। उसे जीने का उतना ही हक है, जितना आदमी को। फर्क सिर्फ इतना है कि आदमी के पास संविधान है, तोप-तलवार है, उसके पास नहीं है; किन्तु प्रकृति ने उसे जीने का अधिकार दिया है।

बॉम्बिक्स-मोरी वंश-जाति का यह प्राणी किसी का कुछ बिगाड़ता नहीं है; यह बहुत शान्त, स्निग्ध, शाकाहारी, मार्देव-प्रिय प्राणी होता है। शहतूत या एरंड के पत्तों पर पलता है और बड़ा/प्रीढ़ होने पर उड़ जाता है। इसके बचे हुए कोयों का इस्तेमाल तो किया ही जा सकता है किन्तु आदमी तो मछलियों की, अंडों की,

रेशम-कीटों की खेती करने पर उतारू हैं। उसे मुफीद नहीं है वना वह इन्हें खाने से भी न चूके। कुछ आदिवासी दीमग तक को तल कर खा जाते हैं। अमेरिका में तिलचट्टों को चॉकलेट में डुबो कर खाना बड़ा जायकेदार माना जाता है। इस तरह कुछ हुआ है राक्षस आज का मनुष्य !!!

इस लालच में कि उसे रेशम का लम्बा, मजबूत और अविच्छिन्न रेशा मिले आदमी लाखों-लाख प्युपाओं/रेशमकीटों को उबाल कर उनकी जानें ले लेता है। जो लोग रेशम का इस्तेमाल करते हैं वे शायद यह नहीं जानते कि एक ग्राम रेशम के उत्पादन में लगभग ५५ प्युपा/रेशमकीटों की जानें जाती हैं।

जो नारियाँ फ़ैशन के उन्माद में रेशमी साड़ियाँ पहिनती हैं और अपने को एक सुन्दर नायिका के रूप में सज्जित करती हैं वे शायद यह नहीं जानती कि वे अपने इस क्षणभंगुर रूपगर्व की सार-सँवार में एक पूरा-का-पूरा मर-घट ओढ़ कर चलती हैं।

ऐसी सैकड़ों जैन महिलाएँ/कन्याएँ/ युवतियाँ

हैं जो रेशमी साड़ियों/ब्लाउजों/रूमालों का उपयोग करती हैं; क्या वे रेशम बनाने की प्रक्रिया को प्रत्यक्ष नहीं देखना चाहेंगी? इन्दौर नगर की जैन महिलाएँ तो यह सब तब देख आ सकती हैं जब वे गोम्मटगिरि की वन्दना के लिए उस ओर जाएँ, जहाँ से कुछ ही किलोमीटर आगे ग्राम खजूरिया का रेशम-केन्द्र है।

जो स्तनपायी जीवधारी होते हैं, उनके खून का रंग लाल होता है, किन्तु जो रीढ़-रहित जीवधारी होते हैं उनके रश्मि का रंग क्रीमी होता है,

जिसे हीमोलिम्फ कहते हैं। रेशम के रूप में हम इसे ही ओढ़ते हैं, यानी खून से लथपथ होते हैं हम रेशम का कोई वस्त्र धारण कर, ग्रहण कर।

आप ही सोचें; हज़ारों-हज़ार कोकूनों से बने वस्त्र पहिन कर हम अहिसक या जैन होने का दावा कैसे कर सकते हैं?

सवाल है : क्या हमें रेशम का उपयोग करना चाहिये ?

मध्यप्रदेश में इन्दौर के निकट महु में अंडे तैयार होते हैं पचमढ़ी में कोकून-बीज और गोम्मटगिरि के निकट खजूरिया के रेशम-उत्पादन-केन्द्र में इनसे उत्पन्न कोकूनों से रेशम तैयार किया जाता है।

खजूरिया का रेशम चँदेरी और महेश्वर तो जाता ही है, वाराणसी भी जाता है, जहाँ से साड़ियाँ बन कर आती हैं और बिना रेशम-उत्पादन की प्रक्रिया को जाने इन्हें शौक से पहिना जाता है।

दुर्भाग्य यह है कि हम जैन जो अब तक छान कर पानी पीते रहे हैं रात को खाना छोड़े रहे हैं कंदमूल का त्याग रखते आये हैं न सिर्फ रेशम के वस्त्र पहिनते हैं वरन् इसका उत्पादन और व्यापार भी करते हैं क्या इस कलंक को हम कभी धो पायेंगे ?

—प्रलयंकर



भगवान् पार्श्वनाथ : खोज जारी रखें

इस क्षेत्र के लोग विविध धान, यव (जौ), गोधूम (गेहूँ), माष (उड़द) आदि की खेती करते थे और पशु-पालन में निष्णात थे। पुण्य-सलिला सरिताओं की गोद में विचरण करना, उनका पूरा लाभ लेना इनका दैनंदिन काम था। आत्मरक्षा के लिए उन्हें क्षात्र कर्म भी प्रिय था। कहा जाता है यहाँ 'शेषनाग संस्कृति' का प्रभाव भी था, जिसे विद्वद्गर्ग सिन्धुघाटी सभ्यता से पूर्व की संस्कृति निरूपित करता रहा है।

—डॉ. मंगल मेहता

जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में विद्वानों में सन्देह तो नहीं रहा है, पर तत्सम्बन्धी पूरे प्रमाण एकत्र कर लिये गये हों—ऐसा भी नहीं है। बिहार के पार्श्वनाथ पर्वत (सम्मोद शिखर) की वह शिला हमारी अमूल्य थाती है, जिस पर बैठ कर वे ध्यान-योग, चिन्तन-मनन और कैवल्य के लिए विचारणा किया करते थे। इसी सुरम्य पर्वत को यह गौरव प्राप्त है कि यहाँ बीस तीर्थंकरों ने कायोत्सर्ग तप किया था। जैन धर्मावलम्बियों के लिए यह शिखर सदैव अनुपम भावनाएँ जगाने वाला एवं प्रेरणादायी तीर्थ-स्थल रहा है।

पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर थे, जो वर्द्धमान महावीर से २५० वर्ष पूर्व हुए (ईसा से करीब ८७७ वर्ष पूर्व)। यह काल उपनिषद्-चिन्तन-धारा का भी महत्त्वपूर्ण काल था। सांख्य दर्शन का भी। पुरातत्त्वविदों ने इस युग के अनेक महत्त्वपूर्ण अवशेष प्राप्त किये हैं।

इनके पूर्ववर्ती तीर्थंकर नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई थे, जिनका काल ईसा पूर्व १४०० माना जाता है।

वेदों की रचना अंतर्वेद क्षेत्र में संपन्न हुई थी। गंगा नदी का सम्बन्ध पुरातन निषाद-संस्कृति से है। आदिम जातियों के कारण आर्यों ने पूर्व की यात्रा शनैः शनैः की थी। यहाँ अरण्य और दलदल वाले क्षेत्र भी थे। यहाँ आर्य एवं उनसे पूर्व की विचारधारा का अंतर स्पष्ट परिलक्षित होता है। विदेह ज्वलन्त उदाहरण हैं, जिनकी निर्लिप्तता, निस्संगता, निर्ममता, और निर्मलता स्मरणीय और प्रेरणादायी रही है। प्रवृत्ति और निवृत्ति परक ये जीवन-धाराएँ ऋषि और मुनि का अंतर बाद तक भी स्पष्ट करती रहीं हैं।

पुण्यतोया वरुणा और असि की संगम-स्थली पर काश्यप गोत्रीय तथा उग्र-वंशी) पार्श्वनाथ जन्में थे। पिता का नाम ह्यसेन, अस्ससेन, अश्वसेन या विश्वसेन था। माता थी वम्भादेई, वाम्मादेवी या। ब्रह्मदत्ता विश्व की अनिन्द्य सुन्दरी थीं वे।

तीर्थंकर : जुलाई ८६/३१

धान के नन्हें-निर्मल पौधों-सा वर्ण था उनका। पार्श्वनाथ ने यही रंग-रूप तो ग्रहण किया था माता से।

इस क्षेत्र के लोग विविध धान, यव (जौ), गोधूम (गेहूँ), माष (उड़द) आदि की खेती करते थे और पशु-पालन में निष्णात थे। पुण्य-सलिला सरिताओं की गोद में विचरना, उनका पूरा लाभ लेना, इनका नित्य कर्म था। रक्षा के लिए इन्हें क्षात्र कर्म भी प्रिय था। यहाँ शेषनाग-संस्कृति का भी प्रभाव था, जिसे विद्वज्जन सिन्धु-घाटी सभ्यता से पूर्व की संस्कृति मानते रहे हैं। तक्षशिला के आसपास इसके प्रचुर अवशेष मिले हैं। किरात, कोल, यक्ष, किन्नर, नाग, असुर, ऋक्ष, द्राविड़, निषाद संस्कृति की शृंखला भी रही है यहाँ।

माना जाता है कि पार्श्वनाथ ने नागों की रक्षा की थी; इस जाति को विनाश से बचाया था। नागराज ने भी तपस्या-काल में उन्हें सुरक्षा प्रदान की थी। यह घटना रामनगर ग्राम (तहसील आंग्ली, जिला नेग्ली) के वन में देवदारु के वृक्षों के समीप घटित हुई थी। पार्श्वनाथ की सभी प्रतिमाओं पर - खड़ी, बैठी या ध्यान-मग्न एक फणधर, पंचफणधर, सप्त फणधर, नौ फणधर छाया करते दिखाये गये हैं। नाग सूर्य के प्रतीक भी माने गये हैं। दीर्घ जीवन के भी।

ईसरी (बिहार) क्षेत्र के मूलवासी इनकी 'मारंगकुरन' देव के रूप में आराधना करते हैं; जो सर्वज्ञ, सर्वज्ञाता, और परमदयालु हैं। बिहार-बंगाल क्षेत्र के आजमगंज, देवलभीर, काँटा बोनिया, मानभूम, सिंहभूम, वीरभूम, बाँकुड़ा क्षेत्र के मूल निवासी आज भी इन्हें इसी रूप में मानते हैं। यदि पार्श्वनाथ ने इनके मूल विश्वासों को अपने विश्वासों के साथ संयुक्त कर लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

सरस्वती-तट पर नागों का प्रभाव अधिक था। अगस्त्य नाग-किरातों की भाषा के ज्ञाता थे। नागराज अर्क उनके मित्र थे। इनकी पुत्री थी लोपामुद्रा। इसे ही अगस्त्य ने वैदिक संस्कृति का ज्ञान दिया था। माना जाता है कि नाग आभूषण प्रिय थे। वसन-प्रेमी थी। शायद वस्त्रों के प्राचीनतम प्रयोक्ता भी वे थे। वे कृषि तथा पशुपालन के विशेषज्ञ भी थे।

मान्यता है कि श्रावण शुक्ल पंचमी (नागपंचमी) पर्व आर्य-नाग-युद्ध-विराम की स्मृति का पर्व है। संभव है नाग पंचमी के अवसर पर आयोजित कुश्तियाँ इसी परम्परा की देन रही हों(?)। नाग शक्ति-सामर्थ्य, अलंकरण के रूप में शिव से जुड़े रहे। उत्ताल तरंगाघात के भयावह नाग-फूत्कार के काव्य प्रतीक के रूप में नीलिमा मम सर्वव्यापी आकाश का विष्णु-स्वरूप और धरित्री की उर्वरता की प्रतीक लक्ष्मी का रूपक अद्भुत है (शेषशायी विष्णु लक्ष्मी स्वरूप)। पार्श्वनाथ के प्रसंग में पार-स्परिक सुरक्षा का अपूर्व सौहार्द्रपूर्ण स्वरूप सहिष्णुता का अनुपम उदाहरण है।

महावीर-के-समवसरण के अवसर पर शास्त्रों में पार्श्वपत्यों का उल्लेख आया है। गौतम बुद्ध के परिजन पार्श्वपत्य मत के मानने वाले थे।

ऋग्वेद में पार्श्वपत्यों का विवरण इस प्रकार आया है: 'लम्बे बालों वाले वे आग लिये रहते हैं, ज़हर लिये रहते हैं, स्वर्ग और पृथ्वी लिये रहते हैं। लम्बे वालों वाले 'प्रकाश' कहलाते हैं। मुनियों को हवा कसे रहती है या वे गंदी पीली पोशाखें पहने रहते हैं।'— (अ.१०/१३५)।

सभी जानते हैं पार्श्वपत्य पीली पोशाखें पहनते थे। आग, ज़हर, स्वर्ग, पृथ्वी प्रकाश व्यंजनार्थ लिये जाएँ। इन्होंने बलि के लिए लोगों के मन में संशय जगाया। इस धारणा पर प्रश्न-चिह्न लगाया।



औपनिषदीय चिन्तन पर श्रमण संस्कृति का प्रभाव दिखायी देता है। 'कर्म' सिद्धान्त पर विश्वास इसका पुख्ता उदाहरण है। एक स्थान पर वर्णन आया है— 'वे दोनों बातें करते चले गये। उन्होंने जो कुछ कहा वह 'कर्म' था। उन्होंने जिसकी प्रशंसा की व 'कर्म' था। वस्तुतः अच्छे कर्म द्वारा व्यक्ति अच्छा बनता है और बुरे कर्म द्वारा बुरा।

याज्ञवल्क्य इसे अपने तरीके से समझते हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि 'आश्रम' एवं 'श्रमण' शब्दों का उत्स एक ही है और वह है 'श्रम्' धातु। 'संन्यास' शब्द का पहली बार उल्लेख जाबालोपनिषद् में आया। वानप्रस्थ के लिए वैदिक साहित्य में 'वैशानख' शब्द आया है। वशिष्ठ धर्मसूत्र में वैशानखों के कर्त्तव्य वर्णन के अन्तर्गत 'श्रमणक अध्याय' आया।

पार्श्वनाथ के बचपन का नाम सुभोग कुमार एवं सुदस्सण कुमार था। बालक पार्श्व इतने निर्भीक थे कि उन्होंने अपने नाना महावली महीपाल (आगे चल कर कमठ) को पत्नी-वियोग में पंचाग्नि तापने पर उनके इस कृत्य को ढकोसला कहा था। उन्होंने बताया कि तप का उद्देश्य काया-को-कण्ठों-से-छुटकारा दिलाना है, काया को पीड़ित करना नहीं। उन्होंने अग्नि में काष्ठ डालने और उसमें नाग जोड़ा होने की घोषणा की और उसकी रक्षा की। इस क्रिया को 'कुरुम' कहा।

उन्होंने अपने युवराजकाल में कुशस्थली जा कर बाह्य शत्रु से रक्षा की और राजा रविवर्मा की सहायता की जिसने अपनी पुत्री प्रभावती के साथ उनका विवाह किया। इस सम्बन्ध में जैनधर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में मतभेद है। रानी गुफा के गुफा-चित्रों में एक चित्र एक पुरुष धनुषधारी का और एक नारी का है। पुरुष बाण चला रहा है और नारी उसकी आश्वस्ति में खड़ी है। इस चित्र को इसी विवाह-स्मृति से जोड़ लिया है कुछ लोगों ने।

कहा जाता है कि अजुध्या (अयोध्या) के राजा अयसेन ने अपना दूत इनके पिता के पास भेजा था, जिसने उनकी राजसभा में ऋषभदेव की गरिमा का वर्णन किया था। पार्श्वनाथ इससे अत्यधिक प्रभावित हुए। अपने उद्यान-महल में उन्होंने नेमिनाथ का विवाह से लौटने का भित्तिचित्र देखा। दीन, निरीह पशुबलि केवल आहार के लिए!!! वे व्यथित हुए, और तीस वर्ष की वय में उन्होंने मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ली।

भ्रमण, चिन्तन, ध्यान-योग करते हुए वे कासी, कोसल, पांचाल, मगध, मारु, अवन्ती, मरहठा, अंग, बंग, जनपदों में ७० वर्षों तक उपदेश देते रहे। उन्होंने अपना विहार सम्मेलन शिखर पर समाप्त किया और इसी गयगीश (?) पर्वत पर कायोत्सर्ग किया। तब विशाखा नक्षत्र था।

उन्हें पुरुषादानिय कहा गया। उनके उपदेशों को 'चतुर्थ्यामी' कहा गया। अपना दाय लो, किसी अन्य का नहीं। वह चोरी है। प्राणि-मात्र को कष्ट मत दो। यही अहिंसा है। किसी के प्रति एकांगी दृष्टिकोण मत रखो। सत्य को समझो। गुण-कर्मों का, सत्कर्मों का परिग्रह करो, शेष का अपरिग्रह। उन्होंने प्रकृति और मनुष्य को अभिन्न माना। नारी के प्रति सम्मान की भावना थी उनके मन में। उन्होंने उसे विकार का स्रोत नहीं माना। वे सहज थे। उनके जीवन में किसी सामाजिक छल-कपट के लिए कोई स्थान नहीं था। वे उदार और क्षमाशील थे। श्वेताम्बर जन मानते हैं कि पार्श्वनाथ प्रतिदिन प्रतिक्रमण द्वारा अपना दोष देखते थे। वे अंतः वस्त्र और उत्तरीय रखते थे। इस मत की साधिवर्या अपने हाथ में जामुन की डालियाँ लिये रहती थीं तथा चौराहों पर उपदेश देती थीं। बाद में वे निमित्त-शास्त्र का उपयोग भी करने लगे। तन्त्रों का भी। कुछ एकल विहारी रहे। कुछ सिर पर विभूति डाले भी।

कंकाली टीले (मथुरा) से प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि यहाँ एक जैन स्तूप था, जिसका काल ईसा-पूर्व दूसरी शती माना जाता है। एक कुशाणकालीन प्रतिमा पर फ्यूरर ने पाठ किया था—'यूपे देव निर्मिते'। तोरण पर भी लेख अंकित है। प्राप्त ईंटों को विद्वान् छठी ईसा-पूर्व का मानते हैं। इसे पार्श्वनाथ स्तूप भी माना है।

पार्श्वनाथ पर प्राकृत-पाली, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, संस्कृत आदि में १०वीं, १२वीं, १४वीं शती के काव्यात्मक ग्रन्थ, स्तवन आदि उपलब्ध हुए हैं। इनमें वादिराज का पार्श्वनाथ चरित, भावदेवसूरि का पार्श्वनाथ चरित्र, षड्भाषामय पार्श्वनाथ स्तवन, शान्ति भद्र का नवपण पार्श्वनमस्कार, ज्योतिकीतिसूरि का पार्श्वदेव स्तवनम्, आचार्य पद्मकीर्ति का 'पासनाहचरिउ' ('पास पुराण) आदि प्रसिद्ध हैं। □

मजाक देखिये,
१९८१ में हैदराबाद पौल्ट्री फार्म के राजेश आहूजा ने कहा था कि सरकार लगातार जोर डाल रही है कि अंडों का उत्पादन बढ़ाओ; किन्तु सवाल यह है कि इन्हें खाये कौन ?

शायद देश की भोलीभाली जनता यह नहीं जानती कि हमारा मुलक खाद्यान्नों के मामले में पूरी तरह आत्मनिर्भर है और उसे अंडों की कतई कोई जरूरत नहीं है; किन्तु पश्चिम की नकल पर हम जो कर रहे हैं उसके बुरे नतीजे कुछ तो सामने आ गये हैं, और कुछ जल्दी ही सामने आ जाएंगे।

उन अंडों को जो आर्थिक दृष्टि से काफी महंगे पड़ते हैं और जिन्हें निर्धारित मानकों के अनुसार पौल्ट्री फार्मों में नहीं रखा जाता तथा इसीलिए मुगियों को कई छूतहा बीमारियों का शिकार होना पड़ता है (देखें— प्रोफिटबल पौल्ट्री कीपिंग इन इंडिया; ए. सी. केम्पबेल रोजर्स; बारहवाँ पुनर्मुद्रण १९७५; पृ. २१४-२३४) उन्हीं के जरिये ये सारी बीमारियाँ अंडे खानेवालों के पेट में दाखिल हो जाती हैं।

'कौन-कौन-सी बीमारियाँ अंडे खाने से होती हैं', क्या सरकार जिस तरह सिगरेटों और उनके पैकटों पर अंकित करती है अंडों की पेटियों और तश्तरियों पर उन्हें अंकित करने को तैयार है? क्या सरकार उन स्थापित तथ्यों को जिन्हें वैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने दुनिया के सामने रख दिया है अंडा-व्यापारियों को खरीदारों को एक स्लिप के रूप में

बाँटने को कह सकती है ?

दुनिया-भर के वैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया है कि अंडे शाकाहार या फलाहार नहीं हैं। वे वृक्ष पर नहीं फलते। खेत में नहीं उगते। उनका जीवन-चक्र अन्य जीवधारियों की भाँति ही है। उन्हें किसी भी स्थिति में निर्जीव नहीं कहा जा सकता।

जो लोग अंडे की बनावट को, उसकी रचना को जानते हैं वे ही इस तथ्य को ठीक से समझ सकते हैं।

आमतौर पर जो तथ्य सामने आये हैं, उनसे यह सिद्ध हुआ है कि अंडे स्वास्थ्य के लिए बेहद खतरनाक हैं। इधर जो ताजा खोजें हुई हैं उनसे प्राप्त नतीजे इस प्रकार हैं—

(१) जर्मनी के प्रोफेसर एग्नरबर्ग का निष्कर्ष है : अंडा ५१.८३ प्रतिशत कफ पैदा करता है। वह शरीर के पोषक तत्वों को असंतुलित कर देता है।

(२) बाल्यावस्था में अंडे खाने से शरीर की विषावरोधी शक्ति संपूर्णतया क्षीण हो जाती है। ऐसे बालक आगे चल कर

साधारण-से-साधारण बीमारी का भी मुकाबला नहीं कर पाते। उनके शरीर का स्वाभाविक विकास काफी मंद पड़ जाता है। उनकी स्मरण-शक्ति क्षीण हो जाती है। उन्हें पीलिया, वात, पथरी, रक्तचाप, आँतों में मवाद जैसे भयंकर रोगों का शिकार होना पड़ता है। यूरिक एसिड-जैसे मारक जहर के पेट में जाने से पाचन-तन्त्र काफी शिथिल हो जाता है। उसमें सड़ाँद आ जाती है।

(३) अंडे खाने से पेचिश तथा मंदाग्नि-जैसी बीमारियाँ घर कर जाती हैं तथा बाद को आमाशय कमजोर पड़ जाता है और आँतें सड़ जाती हैं।

यह कोरी कल्पना नहीं है वरन् इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. राबर्ट ग्रास तथा प्रो. ओकाडा डेविडसन इरविंग का स्पष्ट मत है।

(४) अमेरिका के डॉ. ई. बी. एमारी तथा इंग्लैंड के डॉ. इन्हा ने अपनी विश्व-विख्यात पुस्तकों 'पोषण का नवीनतम ज्ञान' और 'रोगियों की प्रकृति' में स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है कि अंडा मनुष्य के लिए ज़रूर है। बम्बई-स्थित 'हेफकीन इंस्टीट्यूट' ने 'पोषण और तन्दुरुस्ती' नामक किताब में अंडे खाने से होने वाले नुकसानों को प्रमाणित किया है।

(५) इंग्लैंड के डॉ. आर. जे. विलियम का निष्कर्ष है : 'संभव है अंडा खाने वाले शुरू में अधिक स्वस्थता और चुस्ती का अनुभव करें; किन्तु बाद में उन्हें हृदय-रोग, एक्झीमा, लकवा जैसे भयानक रोगों का शिकार हो जाना पड़ता है'। क्या जैन समाज, जो इतने सारे चिकित्सालय और औषधालय संचालित करता है, इस तरह के सर्वेक्षण नहीं करवा सकता ?

(६) बहुत कम लोग इस तथ्य को जानते हैं कि अंडे खाने से न सिर्फ शरीर की शक्ति क्षीण होती है वरन् बौद्धिक और भावनात्मक क्षति भी होती है।

(७) मांसाहार, जिसमें अंडा भी शरीक है, से लाखों लोगों को कैंसर की असह्य पीड़ा सहनी होती है। स्पष्टतः अंडा एक विज्ञापनी और व्यावसायिक साजिश है, उसे किसी भी हालत में बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिये।

(८) ३० प्रतिशत अंडों में डीडीटी होता है। पौल्ट्रीज को जिस तरह रखा जाता है उसमें-से/उस प्रक्रिया में-से हो कर डीडीटी मुर्गी के पाचन/श्वसन-तन्त्र में घुलमिल जाता है। फ्लोरिडा (अमेरिका) के कृषि-

विभाग की हेल्थ बुलेटिन ने इस तथ्य को प्रकट किया है। 'वर्ल्ड हेल्थ', अग-सित. १९८४ के पृ. ५ पर कहा गया है कि एंटाकैटिका में पैग्विनो की चर्बी में डीडीटी पाया गया है। जब पैग्विनो में वह प्रदूषण के माध्यम से पहुँच सकता है तो मुर्गियों में तो पहुँच ही सकता है। यह भी अंडा खाने वाले लोगों की सेहत पर बुरा असर डालता है।

(९) एक अंडे में तक्ररीबन ४ ग्रैन कोलेस्ट्रॉल होता है, जिससे हाइब्लडप्रेसर, किडनी की बीमारियाँ जैसे रोग पैदा हो जाते हैं। यह निष्कर्ष डॉ. राबर्ट ग्रास का है।

(१०) अंडे में कार्बोहाइड्रेट्स बिलकुल नहीं होते; केलिशियम की मात्रा भी न्यून होती है फलस्वरूप उदर में सड़द पैदा हो जाती है। उक्त निष्कर्ष डॉ. ई. बी. मेक्कालम का है।

इसके अलावा मुर्गियाँ खुद कई असाध्य रोगों की शिकार होती हैं, जिनके इलाज पर पौल्ट्री फार्मों को अनाप-सनाप धनराशि खर्च करनी होती है। ये बीमारियाँ या तो मुर्गियों को थोक में मौत के घाट उतार देती हैं या फिर खाने वाले के पेट में दाखिल हो जाती हैं और उसका जीवन जीवित नर्क बना देती हैं।

क्षय, संग्रहणी, पीलिया, कैंसर आदि ऐसी ही बीमारियाँ हैं जो अंडे खाने से होती हैं। इन बीमारियों की एक बृहत् सूची ए. सी. केम्पबेल रोजर्स ने अपनी किताब 'प्रोफिटेबल पौल्ट्री कीपिंग इन इंडिया' के पृ. २१४-२३४ पर विस्तार से दी है।

इस पुस्तक के पृ. २१५ पर साफ-साफ लिखा है कि मुर्गियों को खाने में ताजा कीड़े, केंचुए, ताजा मांस, और ग्रीन बोन देना ज़रूरी

होता है ताकि वे अच्छे अंडे दें; तो क्या इतने पर भी माना जाए कि अंडे फलाहार हैं ?

कौन वेदोपनिषद्-पाठी हिन्दू या समयसारी आचारांगपाठी जैन या अन्य मतावलम्बी शाकाहारी इस तथ्य को स्वीकार कर पायेगा कि अंडा शाकाहार है ?

यह बात अलग है कि हमारी युवा पीढ़ी स्पष्ट जानकारी के अभाव में इस ओर मुड़ रही है; किन्तु यदि

इसे समुचित/तथ्यात्मक जानकारी दी जाए तो यह फिर सही रास्ते पर लौट सकती है; किन्तु सवाल यह है कि हम उसे सही जानकारी देने के लिए क्या प्रयत्न कर रहे हैं ?

क्या ऐसे/इस संवेदनशील क्षण में जबकि हमारा अस्तित्व ही खतरे में है तीर्थरक्षा-समितियों/सभाओं तथा और-और संस्थाओं को जो पुरातत्त्व आदि के कामों में लाखों-लाख रुपया होम रही हैं, "तीर्थकर" के "शाकाहार प्रकोष्ठ" (वेजिटेरियन सेल) की मदद नहीं करनी चाहिये ?

वस्तुतः यह सवाल हमारे जीवन-मरण का है; इसे शीर्ष प्राथमिकता के साथ हल किया जाना चाहिये। क्या हम आने वाले एक पूरे दशक के लिए पंचकल्याणक, प्रतिष्ठाएँ, अंजनशलाकाएँ, दीक्षामहोत्सव, खर्चीले चातुर्मास, महँगे प्रकाशन निलम्बित नहीं कर सकते और अपने सारे साधनों को शाकाहार के प्रचार-प्रसार में नहीं डाल सकते ?

साधुओं/आचार्यों, नेताओं/विद्वानों को इस दिशा में पूरी तत्परता और अविलम्बता के साथ कोई तर्कसंगत/कारगर क्रम उठाना चाहिये या जो क्रम पहले से उठे हुए हैं उनकी

मदद पर बिना किसी मंकोच और झिझक के आ खड़ा होना चाहिये।

○○○

कुछ लोग इस भ्रम को फैला रहे हैं कि अंडे में जितना प्रोटीन होता है, उतना किसी खाद्यान्न में नहीं होता।

यह सरासर झूठ है। जब हम अंडे में पाये जाने वाले तत्त्वों की अन्य वस्तुओं में पाये जाने वाले तत्त्वों से तुलना करते हैं तो सारी सच्चाई दिन की रोशनी की तरह स्पष्ट हो जाती है।

○○○

एक अंडे का औसतन वजन ५० ग्राम होता है, जिसमें ५०० से ६०० मिलीग्राम कोलेस्ट्रॉल की मात्रा होती है और यदि इसे फ्राइ कर लिया जाए तो करेला और नीम चढ़ा हो जाता है यानी उसमें कोलेस्ट्रॉल की मात्रा और अधिक बढ़ जाती है।

आमतौर पर एक व्यक्ति को प्रतिदिन २०० मिलीग्राम कोलेस्ट्रॉल की जरूरत होती है

इससे अधिक लिये जाने पर एथिरोस्केलेरोसिस (एथिरोकाठिन्य) के मौके बढ़ जाते हैं यानी नाड़ियों में काठिन्य/सँकरापन आ जाता है

उनमें रक्तसंचार रुद्ध हो उठता है फलस्वरूप अतितनाव (हायपरटेसन) और हृत्पात/हृदयाघात/दिल-के-दौरे-जैसे गंभीर रोगों की आशंका बढ़ जाती है।

आइये, हम उन मुल्कों पर एक सरसरी नज़र डालें जहाँ शुरू में अंडों का बेहद प्रचार हुआ; किन्तु अब जहाँ सलाह दी जा रही है कि अधिक अंडों का इस्तेमाल न किया जाए। हफ्ते में दो अंडों से अधिक न खायें।

स्वीडन, नार्वे, फिनलैंड, अमेरिका और बर्तानिया ने अपनी जनता को रेशाबहुल खुराक (हाइफाइबर डायट) लेने का परामर्श दिया है और टीवी पर विज्ञापन शुरू किये हैं कि अंडे कम खायें; इसके विपरीत हमारी सरकार/सरकारें अंडे खाने को बढ़ावा दे रही हैं और अंडा-व्यापारियों को प्रोत्साहन और आबाशी दे रही हैं, ऐसे व्यापारियों को जिन्हें पैसा चाहिये, सिर्फ पैसा जिन्हें इस बात की कोई/कतई फिक्र नहीं है कि देशवासियों के स्वास्थ्य का क्या होगा ?

हमारी सरकार कई अन्तर्विरोधों और दोहरी नीतियों के बीच जी रही है एक ओर वह प्रचार करती है कि झराबखोरी से स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचता है, परिवार टूटते हैं, उनकी शान्ति भंग होती है, वह बुरी चीज है तो दूसरी ओर नयी-नयी आसवनियाँ (डिस्टलरियाँ/मद्यनिर्माण-शालाएँ) खोलती है; और अपनी आमदनी के इस महास्रोत को किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहती। जहाँ एक ओर वह कह रही है (बल्कि हर सिगरेट पर अंकित कर रही है) कि सिगरेटें स्वास्थ्य के लिए घातक हैं तो दूसरी ओर वह यूगोस्लाविया से अगस्त-सितम्बर १९८६ में ७५० टन सिगरेटें आयात करने का अनुबन्ध और इंतजाम कर रही है। अनुबन्ध के अनुसार 'युगोस्लाव टुबेको कम्पनी' (निस) भारत को अगस्त-से-दिसम्बर १९८६ के मध्य प्रतिमास १२० टन "बेस्ट" तथा ३० टन "सुपर" ब्रांड सिगरेटें भेजेगी।

यही हाल टीवी पर हफ्ते में कई बार होने वाले (नेशनल एग कोऑर्डिनेशन

कमिटी' के अंडा-विज्ञापन का है। जब यह एक स्थापित तथ्य है कि अंडों में कई तरह के जहर होते हैं और कोलेस्ट्रॉल की मात्रा अत्यधिक होती है तब फिर सरकार कम-से-कम ऐसा क्यों नहीं करती कि उपभोक्ताओं को अंडों के विज्ञापन के साथ उनसे होने वाली हानियों की जानकारी भी दे और सिगरेटों पर दिये जाने वाले स्टेच्युटरी नोट की तरह का कोई वाक्य उसकी पेटियों पर अंकित करे? वह तथ्य बताये, फिर उपभोक्ता खाते हैं या नहीं यह उनके अपने विवेक पर छोड़ दे।

इस समय वह भारतीय जनता के साथ दो खतरनाक खेल खेल रही है; एक, अहिंसा और शाकाहार में आस्था रखने वाले लोगों का दिल दुखा रही है; दो, सार्वजनिक स्वास्थ्य के साथ धोखाघड़ी। वह अपने धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त से अंडों के प्रचार-प्रसार द्वारा विचलित हुई है।

ये कुछ ऐसे महत्व के मुद्दे हैं जिन पर सरकार को वक्त-रहते गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिये वना आगे चल कर तामसिकता के कारण बेहद बुरे नतीजे सामने आयेंगे (आने लगे हैं)।

आयें; हम कोलेस्ट्रॉल, जो हर अंडे में ५०० से ६०० मिलीग्राम तक होता है, से होने वाले नुकसानों पर एक नज़र डालें। आँकड़ों की भाषा चूँकि इन दिनों अधिक प्रामाणिक मानी जाती है अतः यहाँ हम उसी का सहारा ले रहे हैं।

यूएसए (अमेरिका) की कुल आबादी २३००४९००० है, जहाँ हर साल १० लाख लोग हृदयाघात/दिल-के-दौरे से मरते हैं। ज्यादातर लोग जानने लगे हैं कि ऐसा क्यों हो रहा है, इसीलिए वे दो काम कर

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

कितने महँगे हुए हैं हमारे साधु ?

संपादकजी,

यह आपने क्या कर डाला ? 'तीर्थकर' के सम्पादकीय का शीर्षक रखा 'चलो क्रोध करें ?' बड़ा अनुचित काम किया आपने। इसका शीर्षक तो होना था 'चलो हँसें'। पर हाँ, आपको सावधान किये देता हूँ इतना न हँसें कि दम ही घुट जाए; अतः केवल मुस्कुरा दें।

न जाने क्यों अनायास ही एक भक्त कवि की दो पंक्तियाँ गुनगुना उठा—
'काम न छोड़ा, क्रोध न छोड़ा, हरि-भजन क्यों छोड़ दिया ?'

तभी अचानक मेरे एक मित्र आ टपके। बोले—आज क्या गुनगुना रहे हो ? मैंने चट से उनके सामने आपका 'संपादकीय' रख दिया। उन्होंने भी कुछ पढ़ा न पढ़ा कि बोल पड़े, 'अरे भाई, क्यों साधुओं के पीछे पड़े हो ? इन लोगों ने छोड़ा ही क्या है केवल एक वस्तु के सिवाय ?'

वह वस्तु क्या है यह जानने को मैं उद्ग्रीव हो उठा। पूछा—'वह क्या है ?'
उन्होंने कहा—'परिवार-परिपालन का दायित्व'।

सिनेमा के पर्दे पर क्लाइमैक्स आने पर जिस प्रकार वाद्य-यन्त्र एक साथ झनझना उठते हैं वैसे ही मेरी धमनी, शिराएँ, उपशिराएँ सभी एकबारगी झनझना उठीं। क्या हम साधु इसीलिए बनते हैं ?

सम्पादकजी, बात कटु होने पर भी बड़ी सत्य है। हमारे साधुओं ने न लोभ छोड़ा, न क्रोध छोड़ा, न मान छोड़ा, न मोह छोड़ा। बस मेरे मित्र जैसा कहते हैं वैसे ही एक परिवार-पालन का दायित्व मात्र ही तो छोड़ा है। अगर आपकी इजाजत हो तो एक शब्द मैं और जोड़ दूँ वह है हरि-भजन या स्व-साधना।

मेरे सम्मुख कितने ही दृश्य तैर रहे हैं कितनी ही कथाएँ एवं कितनी ही व्यथाएँ। किसे कहूँ, किसे नहीं कहूँ ?

एक साधु इधर ही विहार कर रहे थे। उनका एक पत्र भुझे देखने को मिला, जिसमें था उपालम्भ-ही-उपालम्भ। और था आदेश कि जिस स्थान पर वे पहुँचेंगे वहाँ इतने बैनर्स लगने चाहिये, बैनर्स में अमुक-अमुक लिखा होना चाहिये, बैण्ड पार्टी होनी चाहिये, जुलूस कैसा होगा, क्या नारा लगाया जाएगा आदि-आदि।—अचम्भे में पड़ गया। क्या साधु ऐसा पत्र भी लिख सकते हैं ? किसी राजनैतिक नेता का वह पत्र होता तो बात कुछ बनती भी...

एक साधुजी की अगवानी में जाने का मौका मिला। हर हफ्ते बसें छुट्टी थीं। एक-एक पड़ाव पर उनका स्वागत होता था। पत्रों में समाचार छपते कि महाराज साहब के दर्शनों के लिए इतनी बसें आयीं; किन्तु बसें कैसे जाती थीं वह तो महाराज भी जानते हैं और आम जनता भी। किराया मुफ्त, खाना मुफ्त तो भला छुट्टी के दिन सैर-सपाटा करने की इच्छा किसकी नहीं होगी ? अतः एक दिन मैं भी सैर-सपाटे के लिए चला गया।

बातचीत के दौरान महाराज साहब ने कहा— रास्ते में कितने परिषह सहन करने पड़ते हैं—कहीं का पानी कैसा, तो कहीं का पानी कैसा। मेरे मुख से तुरन्त निकल गया—परिषह क्या होता है यह आपने जाना ही कहाँ है—आपके तो साथ गाड़ा रहता है, आहार की सामग्री का और रहते हैं आदमी जो आपको खिलाते-पिलाते ला रहे हैं। भूख-प्यास के परिषह को आप क्या जानें? वह तो जानता है सनातनी साधु (मठाधीश और महन्तों को छोड़ कर) जिसे भीख माँग कर आहार जुटाना पड़ता है।

एक उपाश्रय में गया तो देखा—प्रकाशकों की दुकान की तरह वहाँ कागज का ढेर लगा है। पूछा—इतने कागज का क्या होगा? ज्ञात हुआ—महाराज की पुस्तकें छपेंगी।

एक आचार्य ने मुझसे कहा—दवाई, पानी व मेरे शिष्य की लिखाई-पढ़ाई की बात छोड़ दें तो मेरे पीछे समाज का व्यय होता है हफ्ते में मात्र २ रु. ३७ पैसे। नहीं जानता यह आँकड़ा उन्होंने कैसे प्राप्त किया? पर मैंने प्रतिवाद करते हुए कहा—मैंने तो सुना है कि एक लाख से ऊपर तो अभी तक खर्च हो चुका है। तो वे निरुत्तर हो गये। इनके खाने पर खर्च तो होता नहीं; जो कुछ होता है वह दवाई-पानी, शिष्यों की लिखाई-पढ़ाई, प्रचार-प्रसार, क्रिया-काण्ड, ग्रन्थ-प्रकाशन और अन्य स्थानों से आये भक्तों के आहार-पानी पर, शेष विहार पर। छोटे-मोटे साधुओं का खर्च ही लाखों से ऊपर जाता है, बड़े-बड़े आचार्यों का तो कहना ही क्या? सोचता हूँ—‘कितने महँगे होते हैं हमारे साधु?’

याद आ रही है एक सनातनी साधु की बात। उस समय मैं जुड़ा हुआ था एक किताब की दुकान से। वे एक दिन अचानक मान-सरोवर से आये और चार-पाँच दिनों के लिए वहाँ ठहरे। उनके लिए न बैनर्स लगा, न बैण्ड बजा, न चन्दा इकट्ठा किया गया। भक्तगण भी आ गये, उनके आहार की सामग्री भी जुट गयी; न कोई नौकर, न चाकर; न प्रचार, न प्रसार; न कोई किताब छपवाने की तमन्ना। जैसे एक दिन आये वैसे ही एक दिन चले गये। सम्पादकजी, साधुओं के लिए चन्दा-चिट्ठा? क्या है यह सब?

एक साधुजी के साथ प्रकाशन के विषय में बातचीत हो रही थी जो कि ग्रन्थों के प्रकाशन में जुटे हुए थे। बता रहे थे—मुझे इतनी-इतनी पुस्तकों का प्रकाशन करना है। मैंने सूची देखी; लगा—इन पुस्तकों का प्रकाशन कोई मायने नहीं रखता। फिर भी छप रही हैं। उद्देश्य एक ही। उनमें नाम होगा, फोटो होगा, उनकी प्रशंसा होगी, भूमिका के रूप में। कहने लगे—मेरी पुस्तकें तो अग्रिम ही बिक जाती हैं। मैंने कहा—क्यों नहीं बिकेंगी आप साधु(?) जो हैं? मेरी पुस्तकें तो अग्रिम क्या बाद में भी बिकनी मुश्किल हो जाती हैं; किन्तु क्या आपने किसी से पूछा है कि वे लोग आपकी किताबें पढ़ते भी हैं? मुझे तो मालूम है वे सब रट्टी के भाव में बिकती हैं। जरा सोचिये इस प्रकार समाज में कितने पैसे बर्बाद होते हैं इन सब पर?

एक महाराज के शिष्य ने कहा—आप महाराज का फोटो अपने पत्र में क्यों नहीं छापते? मैंने कहा—आवश्यकता नहीं होती इसलिए। उन्होंने कहा—सभी तो

छापते हैं। मैंने कहा—सभी का जवाब मेरे पास नहीं है। एक दिन बाद बोले—मैं आपके पत्र में एक विज्ञापन देना चाहता हूँ, छापेंगे? मैं तो मन-ही-मन ताड़ गया कि विज्ञापन क्या होगा? अतः प्रत्युत्तर दिया—आप क्या विज्ञापन देंगे ज्ञात करने पर ही कह सकता हूँ कि छाप सकूँगा या नहीं। बोले—महाराज साहब का फोटो छपवाना चाहता हूँ। मैंने कहा—मुझे नहीं छापना है। वे बोले—वैसे मिलने पर भी? मैंने कहा—हाँ।

सम्पादकजी, खत बड़ा हो रहा है पर एक घटना का उल्लेख तो करना ही चाहूँगा। उक्त साधु ने ही फिर एक दिन कहा—आपकी कोई अप्रकाशित पुस्तक हो तो दीजिये, मैं प्रकाशित करवा दूँगा। मैंने सुनी-अनसुनी कर दी; पुनः एक दिन बोले—आपने अपनी पुस्तक भिजवायी नहीं? मैंने जवाब दिया—भिजवा दूँगा। फिर एक दिन और मिले तो पूछा—भिजवायी नहीं पुस्तक? मैं उस दिन तैयार हो कर ही गया था; प्रस्तुत कर दी और कहा—किन्तु मेरी दो शर्तें हैं—दानदाता का नाम तो छाप सकते हैं फोटो नहीं तथा दूसरा, उसमें महाराज साहब का भी फोटो नहीं रहेगा। सुनते ही उनकी व्यवसायी बुद्धि को झटका लगा। तुरन्त मीटर तो लौटा नहीं सके; किन्तु बोले—देख कर जबाब दूँगा। कहना आवश्यक नहीं कि तीन दिन बाद ही मीटर लौट कर आ गया।

सम्पादकजी, अब आप ही कहिये—हम इन पर क्रोध करें, या हँसें या कि मुस्करायें?

—गणेश ललवानी

(पृष्ठ १० का शेष)

रहे हैं : धर्म की ओर आ रहे हैं; अपने आहार पर ध्यान दे रहे हैं। उन्हें राय दी जा रही है कि वे अपनी रोज़मर्रा की खुराक में अंडों को कम-से-कम जगह दें। पश्चिमी जर्मनी जैसे छोटी आबादी वाले मुल्क (६१३०००००) में दिल-के-दौरे से प्रतिवर्ष ५ लाख मौतें होती हैं। यूके (बर्तानिया), जिसकी आबादी ५५८६५००० है, में प्रति तीसरे मिनट एक व्यक्ति हार्टअटैक से भगवान् को प्यारा हो जाता है। यद्यपि भारत के बारे में कोई प्रामाणिक आँकड़ा उपलब्ध नहीं है; किन्तु अखबार की सुर्खियों में जो कुछ देखने को मिलता है, वह कोई कम निराशाजनक नहीं है।

एक सवाल करवट लेता है कि भारत सरकार का स्वास्थ्य मन्त्रालय

इन दिनों खानपान के बारे में इतना चिन्तित क्यों नहीं है जितना कि विगत कुछ दशकों में रहा है?

भारत सरकार की हेल्थ बुलेटिन क्र. २३ एक ऐसा दस्तावेज़ है जो मांसाहार से क्या-क्या नुकसान होते हैं, का निष्पक्ष वैज्ञानिक/तुलनात्मक ब्यौरा देता है। इसके अध्ययन से अंडा कितना घातक है, इसका स्पष्ट अन्दाज़ लग जाता है और हमारा ध्यान एक संतुलित आहार की ओर आपोआप मुड़ जाता है। यह एक ऐसा आलेख है जिसे सभीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ लाखों-लाख की संख्या में सारे देश में प्रचारित किया जाना चाहिये।

जैनों को, जो अहिंसा के पुजारी माने जाते हैं और जिनके ध्वज पर "अहिंसा परमो धर्मः" का नारा अंकित रहता है,

तीर्थंकर : जुलाई ८६/४१

इस दिशा में तुरन्त कोई प्रभावशाली कदम उठाना चाहिये।

उन्हें चाहिये कि वे अपने सारे फिजूल खर्च बन्द करें और एक करोड़ रुपयों का एक अंडा-विरोधी कोष कायम करें।

“तीर्थकर” ने इस दृष्टि से एक स्वतन्त्र “शाकाहार प्रकोष्ठ” स्थापित किया है, जिसके माध्यम से वह लोगों को आहार-संबन्धी परामर्श देगा और प्रचार माध्यमों से मांसाहार — इस समय विशेषतः अंडों-का पुरजोर विरोध करेगा।

तमाम जैन संस्थाओं और समाचार-पत्रों को चाहिये कि वे इस ‘प्रकोष्ठ’ की मदद करें और एक राष्ट्रव्यापी अभियान शुरू करने में उसके साथ कन्धे-से-कन्धा भिड़ा कर काम करें।

तमाम स्कूलों में/शिक्षण-संस्थाओं के छात्रों को लघुपुस्तिकाओं के रूप में या पुस्तकों के कन्हर के रूप में ऐसा साहित्य वितरित किया जाए जिनमें मांसाहार/अंडे खाने से होने वाली खतरनाक बीमारियों का प्रामाणिक उल्लेख हो।

टीवी, आकाशवाणी, दैनिक अखबारों आदि में भरपूर विज्ञापन दिये जाएँ ताकि लोगों को पता लगे कि अंडे खाने या मांसाहार करने की क्या-क्या बुराइयाँ हैं ?

इस अभियान में जो भी व्यक्ति सम्मिलित होना चाहे वह हमें पत्र लिखे ताकि हम उसे बता सकें कि वह हमारी कैसी और किम तरह की मदद कर सकता है।

हमें स्थापित संस्थाओं पर कतई कोई भरोसा नहीं है, हम तो उन लाख-लाख आम जैनों पर विश्वास करना चाहते हैं जो हमारे साथ आ सकते हैं और जिनके बहुत साधारण सहयोग से हमारा यह अभियान कामयाब हो सकता है। यदि गरीब-से-गरीब और अमीर-से-अमीर

जैन अपनी आय का एक प्रतिशत भी इस काम पर खर्च कर सके तो हमें भारी सफलता प्राप्त हो सकती है।

आज आहार-शुद्धि ही हमारी तीर्थयात्रा हो, वही हमारा पंचकल्याणक हो, वही हमारी रथयात्रा हो, वही हमारी प्रतिष्ठा और अंजनशलाका हो, वही हमारा सर्वस्व हो।

अंत में हम भारत सरकार की हेल्थ बुलेटिन क्र. २३ से अंडे, सोयाबीन, हरे चने तथा मूंगफली में पाये जाने वाले तत्त्वों की जानकारी दे रहे हैं, जिससे यह पता चलेगा कि अंडा एक व्यापारिक चाल है, स्वास्थ्य के लिए वह फायदेमन्द नहीं है।

○ ○ ○

अंडे में प्रोटीन १३.३%, चर्बी १३.३%, खनिज १.०%, कार्बोहाइड्रेट्स ०.००%, केलिशियम ०.०६%, फॉस्फरस ०.२२%, लौह घटक २.१%, कैलरीज (ऊष्मांक) १७३ होते हैं।

हरे चने में प्रोटीन २४.०%, चर्बी १.३%, खनिज ३.६%, कार्बोहाइड्रेट्स ५६.६%, केलिशियम ०.१४%, फॉस्फरस ०.२८%, लौह-घटक ९.८%, कैलरीज ३३४ होती हैं।

मूंगफली में प्रोटीन ३१.५%, चर्बी ३९.८%, खनिज २.३%, कार्बो-हाइड्रेट्स १९.३%, केलिशियम ०.०५%, फॉस्फरस ०.३९%, लौह-घटक १.६%, कैलरीज ५४९ होती हैं।

सोयाबीन में प्रोटीन ४३.२%, चर्बी १९.५%, खनिज ४.६% कार्बोहाइड्रेट्स २२.९%, केलिशियम ०.२%, फॉस्फरस ०.६९%, लौह-घटक ११.५% तथा कैलरीज ४३२ होती हैं।

—ने. चं. जैन

संग्रह के काबिल

उपवास के विषय में आपने जो विवेचन किया है, वह निश्चित ही प्रशंसनीय है। संपादकीय में जो कुछ आप सन्दर्भित विषय में कह सकते थे, वह आपने किया है। मुझे आशा है, यह अंक सबके लिए पठनीय एवं संग्रहणीय बनेगा। वैसे 'तीर्थकर' का हर अंक संग्रह के काबिल है।

—श्रेयांसप्रसाद जैन, बम्बई

'अपीलिंग'

आज हम जिस जटिल/विषम परिस्थिति में हैं, उसमें आपका उपवास-सम्बन्धी संपादकीय लेख 'अपीलिंग' है।

—आत्माराम सरावगी, कलकत्ता

ऊँचा स्थान

'जैन जैविकी विशेषांक' और 'उपवास-अंक' बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। वैसे 'तीर्थकर' का प्रत्येक अंक अपनी मौलिकता लिये हुए सद्विचार समाज के सामने प्रस्तुत करने में पत्र-जगत् में बहुत ऊँचा स्थान रखता है, यह सत्य है।

ऐसे अंकों की सामग्री जुटाकर मौलिक ढँग से प्रस्तुत करने के लिए संपादकजी और साथ ही लेखकगण भी धन्यवादाह्व हैं। 'तीर्थकर' का अधिकाधिक प्रचार प्रपेक्षीय है।

—मंवरलाल न्यायतीर्थ, जयपुर

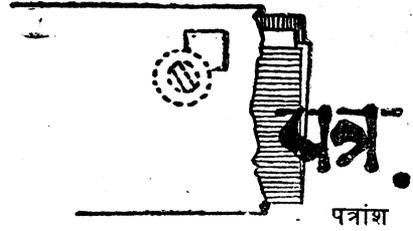
आत्मालोचन की प्रेरणा

'चलो क्रोध करें' (संपादकीय, जून, ८६) से आत्मालोचन की प्रेरणा मिलती है और 'चलो आक्रोश से बचें' का भाव जागरित होता है। सारी सामग्री मननीय है।

—कन्हैयालाल सरावगी, छपरा

नये आयाम

'चलो क्रोध करें' संपादकीय लेख गौर से दो-तीन बार पढ़ा। बहुत अच्छा लगा। अंधविश्वास और शिथिलताओं को दूर करने के नये आयाम उसमें मैंने



पाये, जहाँ पहुँचना जरूरी है।

—प्रा. सौ. लीलावती जैन, जलगाँव

स्थिति पर प्रकाश

'चलो क्रोध करें' संपादकीय लेख में आपने जैन समाज की वर्तमान स्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश डाल दिया है।

—बिरधीलाल सेठी, जयपुर

सत्य-शिव, सुन्दर भी

'चलो क्रोध करें' संपादकीय के भेष में एक ऐसा लेख है जिसमें सत्य-शिव की झलक है; सुन्दर तो है ही। काश, लेख में वर्णित स्थलों पर समाज क्रोध करना सीख लो, तो जैनधर्म/समाज का ढाँचा सही स्वरूप पा सकेगा।

—सुरेश सरल, जबलपुर

बहुत पसन्द

'णमोकार और गणित' (आवरण पृ. २-३, जून, ८६) बहुत ही पसन्द आया। —मुनि अभयसागर, अज्ञा (गुजरात)

विचार-प्रवर्तक

जून-अंक के सभी लेख पठनीय, चिन्तनीय और विचारणीय हैं। 'णमोकार और गणित' लेख तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विचार-प्रवर्तक है।

—हुकमचंद जैन गृहाणकरी, नागपुर

सर्वोत्कृष्ट

'तीर्थकर' जैन संप्रदाय का ही नहीं, किन्तु सत्यप्रेमी मानव-समाज का एक महान् वैचारिक, चिंतनशील तथा भावना-

प्रेरक पत्र है। जून-अंक में 'णमोकार और गणित' लेख सर्वाङ्कृष्ट तथा मननीय है।

—शांतिकुमार डवली जैन, नागपुर

बेमिसाल / बोधगम्य

'चलो क्रोध करें' (संपादकीय) के द्वारा आपने भौतिकवाद के नशे में चूर मिथ्यात्व की गहरी निद्रा में डूबे जैन समाज को चिकोटी काटकर जगाने का जो प्रयास किया है, वह बहुत ही सराहनीय है, इस पर भी वह न जगे तो दुर्भाग्य है उसका।

'णमोकार और गणित' अपने ढँग का बेमिसाल लेख है। ऐसे दुरूह विषय को समझाने की आपकी शैली अत्यन्त सरल और बोधगम्य है।

मैं 'तीर्थकर' का वार्षिक सदस्य लगभग १० वर्ष से हूँ। यह पत्रिका मेरे जीवन को बहुत ही प्रेरणा देती रही है, जिसका मैं बहुत ही ऋणी हूँ। इसके विशेषांक भी मेरी मानसिक क्षुधा मिटाने में बराबर सहायक रहे हैं।

—अभिनन्दनप्रसाद जैन,
नेनी, इलाहाबाद

पठन के योग्य

'तीर्थकर' के सभी अंक पठनीय हैं। जून-अंक में 'जैन पत्र-पत्रिकाएँ' (बातचीत) सभी समस्याओं पर बहुत ही बेबाक है। इसी प्रकार जैन साहित्य : तकादे और चुनौतियाँ भी दिशाबोध प्रदान करता है।

—बी. कुमार, जयपुर

अत्यन्त प्रसन्नता

जून-अंक में आपका संपादकीय और जैन पत्र-पत्रिकाओं से संबंधित वार्ता (बातचीत) पढ़ कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। —भंवरलाल छाजेड़, नीमच

नवचेतना का शंखनाद

आजकल आप 'तीर्थकर' के माध्यम से हमारी जड़ता पर मर्मन्तिक प्रहार कर रहे हैं; झूठी आस्थाओं को जड़ से हिला कर नवचेतना का शंखनाद कर रहे हैं।

—लक्ष्मीचन्द जैन, छोटी कसराबद

नये आजीवन सदस्य रु. २५१

१०४. श्री सोहनलाल दूगड़
पी-१२, न्यू हावड़ा ब्रिज अप्रोच रोड
पो. कलकत्ता-७००-००१
१०५. श्री आर.एस. लोढा
८, नेशनल टावर
१३, लाउडन स्ट्रीट
पो. कलकत्ता-७००-१७
१०६. श्रीमती इन्दु सरावगी
द्वारा : आशा स्टील इण्डस्ट्रीज
२३-ए, नेताजी सुभाष रोड
(५वीं मंजिल, रूम नं. १७)
पो. कलकत्ता ७००-००७
१०७. श्री प्रधानाध्यापक
श्री जैन श्वेताम्बर सेकेण्डरी स्कूल
घीवालों का रास्ता
जौहरी बाजार
पो. जयपुर ३०२-००२
१०७. श्रीमती पुष्पा जैन
द्वारा : श्री एन. के. जैन
१०-५-१४/२, मसब टैंक
(पुलिस मेस के सामने)
पो. हैदराबाद ५०००२८
(आंध्रप्रदेश)
१०९. श्री सुमतकुमार जैन
सुपुत्र : श्री हुकमचंद जैन
ई-७, ईस्ट आजाद नगर
(अशोक चूना भट्टी के पास)
पो. दिल्ली ११०-०५१
(शेष पृष्ठ ४६ पर)



अहिंसा इण्टरनेशनल, नईदिल्ली द्वारा नवगठित वार्षिक पुरस्कार 'अहिंसा इण्टरनेशनल डिप्टीमल जैन संस्कृति पुरस्कार' की डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी की अध्यक्षता में चयन समिति की बैठक में १९८५ वर्ष का पुरस्कार जैन इतिहास एवं संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान् लखनऊ निवासी डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन को भेंट करने का निर्णय लिया गया है। रु. ११००० का यह वार्षिक पुरस्कार अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा विश्वशान्ति, अहिंसा, शाकाहार, जैन इतिहास एवं संस्कृति तथा अन्य विद्याओं के प्रमुख तथा प्रतिभावान् लेखकों को देने के लिए इस उद्देश्य से गठित किया गया है कि इन विषयों पर और अधिक अच्छे साहित्य का निर्माण हो और प्रतिभावान् लेखकों का इन विषयों पर साहित्य प्रकाश में आए। ७४ वर्षीय डॉ. जैन हिन्दी और अंग्रेजी के सिद्धहस्त लेखक हैं। उनके १००० से भी अधिक विद्वत्तापूर्ण लेख अब तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', 'जैनधर्म एवं संस्कृति', 'प्राचीन जैनधर्म', 'जैनधर्म का स्तर' उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। पुरस्कार-वितरण-समारोह का आयोजन इस वर्ष के अन्त तक आयोजित किया जाएगा।

—इक्कीसवाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार गुजराती के मूर्धन्य कथा-शिल्पी श्री पन्नलाल पटेल को उनके भारतीय साहित्य में अपूर्व योगदान के लिए घोषित किया गया है। श्री पटेल ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने वाले दूसरे गुजराती साहित्यकार हैं। इससे पहले तीसरा ज्ञानपीठ पुरस्कार (१९६७) श्री उमाशंकर जोशी को सहविजेता के रूप में प्रदान किया गया था।

—रीजनल वर्ल्ड जैन कांग्रेस का आयोजन यू. एस. ए. (अमेरिका) के न्यू जर्सी-स्थित सिद्धाचलम् में ३, ४ और ५ अक्टूबर १९८६ किया जा रहा है। आवास और भोजन की व्यवस्था अमेरिका-निवासी जैनों द्वारा की जाएगी। अपेक्षित जानकारी श्री सतीश कुमार जैन, सेक्रेटरी जनरल, जैन वर्ल्ड कांग्रेस, ६८८, बाबा खड्गसिंह मार्ग, नई दिल्ली ११०-००१ से प्राप्त की जा सकती है।

—डॉ. एम. पी. पटैरिया का जीवन-वृत्त 'एशियन रायटर्स हू' ज हू' के आगामी संस्करण में प्रकाशित किया जाएगा। यह भी उल्लेखनीय है कि लर्नेड इण्डिया हू' ज हू' के शीघ्र प्रकाश्य संस्करण में भी डॉ. पटैरिया का जीवनवृत्त (सचित्र) प्रकाशित हो रहा है। डॉ. पटैरिया प्राच्य-विद्या शोध अकादमी, चुरारा (झाँसी) के सचिव/निदेशक हैं और संस्कृत भाषा-साहित्य, धर्म और दर्शन तथा नीति एवं आचार-सम्बन्धी वैचारिक क्रान्ति-प्रधान लेखन/चिन्तन के क्षेत्र में अग्रसर हैं।

—श्री मुम्बई जैन युवक संघ, बम्बई द्वारा संपादक और कवि-मित्रों के साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में श्री वसन्तलाल डी. नरसिंहपुरा को इंग्लैंड तथा यूरो-

समाचार - परिशिष्ट

तीर्थकर : जुलाई ८६/४५

पीय देशों में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक और शासन-तंत्र की गतिविधियों का अध्ययन करने के लिए भेजने का निश्चय किया था। २५ जून से प्रारंभ हुई यह माह भर की यात्रा में श्री नरसिंहपुरा ने प्रवासी धर्मावलम्बी और देशवासियों से भी सम्पर्क किया।

—दि. जैन अतिथय क्षेत्र श्री महावीरजी में जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी द्वारा गत ११ से २० जून, ८६ तक 'अपभ्रंश भाषा प्रशिक्षण शिविर' जिसमें स्नातकोत्तर स्तर के १६ प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया। इसके साथ १४ से २० जून, ८६ तक एक 'जैन शिक्षा प्रशिक्षण शिविर' का भी आयोजन किया गया, जिसमें छठी कक्षा से लेकर एम. एस सी., एल.एल. बी. एवं इंजीनियरिंग कक्षाओं तक के २६ प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया। प्रशिक्षकों और प्रशिक्षणार्थियों के मार्ग-व्यय एवं भोजन-आवास की व्यवस्था क्षेत्र की ओर से की गई।

—आठ वर्षों के बाद २९ जून, ८६ को पुनः दिल्ली में मंगल प्रवेश पर लालकिला मैदान में आयोजित समारोह में एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी ने देश की जनता से अपील की कि वह हिंसात्मक प्रवृत्तियों को छोड़कर अहिंसा और रचनात्मक कार्यों में लगे, ताकि देश को वर्तमान संकटपूर्ण स्थिति से उबार जा सके। मुनिश्री का भावभीना स्वागत किया गया।

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी के ससंध वर्षायोग की स्थापना गत २० जुलाई, ८६ को सायं ४ बजे श्री कुन्दकुन्द भारती भवन, ससंग विहार मार्ग, निकट कुतुब होटल, नई दिल्ली में समारोहपूर्वक संपन्न हुई।

—इन्दौर में गोम्मतगिरि पर युवाचार्य मुनिश्री पुष्पदन्तसागरजी के ससंध वर्षा-

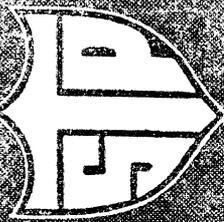
योग की स्थापना भी २० जुलाई को सायं हुई।

—साध्वीश्री मृगावती का देहावसान दिल्ली के वल्लभ स्मारक में गत १८ जुलाई को हो गया। उन्होंने १२ वर्ष की उम्र में जैन दीक्षा ग्रहण की थी। दक्षिण भारत, पंजाब और उत्तरी भारत में व अन्य क्षेत्रों में अपने प्रभावशाली प्रवचनों से 'सहधर्म समभाव' की भावनाएँ फैलाई थीं। ऐसे कार्यों के कारण ही आचार्यों ने उन्हें 'जैन भारती' की उपाधि से विभूषित किया था।

(पृष्ठ ४४ का शेष)

९१०. डॉ. डी. सी. जैन
२३७, नया बाजार-१
पो. दमोह ४७०-६६१ (म.प्र.)
९११. श्री सन्तोषकुमार सिंघई
सिंघई आयरन स्टोर
स्टेशन रोड
पो. दमोह ४७०-६६१ (म.प्र.)
९१२. डॉ. के. के. जैन
हीरागंज
पो. कटनी (जबलपुर) ४८३५०१
९१३. मोदी कोमलचन्द जिनेन्द्रकुमार जैन
क्लाथ मर्चेन्ट
पो. शाहगढ़ (सागर) ४७०-३३९
९१४. श्री सेठ देवेन्द्रकुमार जैन
सुपुत्र : श्री सेठ बाबूलाल जैन
नगरपालिकाध्यक्ष
पो. शाहगढ़ (सागर) ४७०-३३९
९१५. श्री संजयकुमार चन्दूलाल शहा
ग्रीनफील्ड, प्लॉट नं. १४
अजिंक्य तारा गृहनिर्माण सोसायटी
पो. सातारा ४१५००१ (महाराष्ट्र)

Pioneers and still
the brand leaders
**SHALIMAR
TAR**



THE RANGE

- | | |
|--|---|
| <p>COAL TAR BASE</p> <ul style="list-style-type: none"> ● FRELING COATINGS ● MATERIALS ● PITCH ● CRESOLITE OILS ● ANTI-CORROSIVE PAINTS ● SEALANTS <p>CONCRETE PRODUCTS</p> <ul style="list-style-type: none"> ● FOAM CONCRETE ● PRE-STRESSED CONCRETE BEAMS <p>OTHER PRODUCTS</p> <ul style="list-style-type: none"> ● PRESS STICK SEALERS ● EPOXIES ● REFRIGERATION SEALANTS | <p>CONTRACTS</p> <ul style="list-style-type: none"> ● WATERPROOFING AND DAMP-PROOFING ● CIVIL ENGINEERING ● ROAD SURFACING AND FLOORING ● PIPE COATING AND WRAPPING ● ANTI-CORROSIVE TREATMENTS <p>CONSULTANCY TECHNICAL</p> <ul style="list-style-type: none"> ● PRODUCT APPLICATION ● PROJECTS ● PRODUCT DEVELOPMENT ● NEW FORMULATION |
|--|---|

the name that means 100% protection



STP Limited

The new name for Shalimar Tar Products (1935) Limited

CALCUTTA RANGE, CALCUTTA-700001.
TELEX: 021-3536 GRAM: SHALIMARTAR • PHONE: 22-1165/1313/1300/7941
BRANCHES IN ALL MAJOR INDIAN CITIES

अहिंसा जीवन-धर्म है

अहिंसा, माता की गोद के समान, समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाली है। इस शब्द की मधुरता को चख कर प्राणियों के परस्पर वैरभाव का उपशम होता है। वैरभाव की निवृत्ति से हृदय में शान्ति की शीतल नदी प्रवाहित होती है। शान्ति की इस जलधारा में अवगाहन करने वाला विश्व ही तत्त्व-चिन्ता की ओर प्रवृत्त हो सकता है। इस प्रकार अहिंसा परम्परा-सम्बन्ध से तत्त्व-चिन्ता-परिणामी मोक्ष के लिए मुख्य साधन है।

—प. पू. एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्द

भारत रेडिएटर्स प्रा. लिमिटेड

मुख्य कार्यालय

८१, बजाज भवन

नरीमन पॉइंट

बम्बई-४०० ०२१

दूरध्वनि : { २०२००८५
२०२१४९७

तार : स्मूथरन

कारखाना

विद्यानगरी मार्ग

कालिना, सांताक्रुस

बम्बई-४०० ०९८

दूरध्वनि : { ६१२२९६५
६१२३४५७

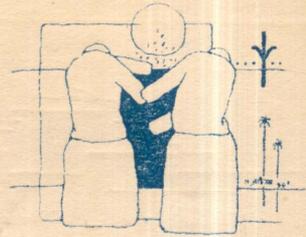
तार : प्रेसवर्क

दिसम्बर १९८६ में

तीर्थकर का

'टोना-टोटका / जंतर-मंतर

विशेषांक'



अन्धविश्वासों से बचें

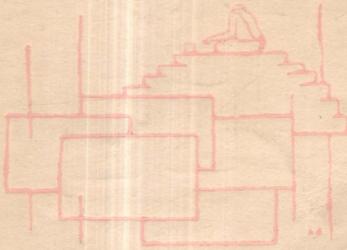
टोने-टोटके और जंतर-मंतर आज हमारे जीवन पर बुरी तरह छा गये हैं; यहाँ तक कि बड़े-बड़े साधु और विद्वान् इनके फँदों से नहीं बचे हैं; याद रहे : जैनधर्म के आध्यात्मिक और दार्शनिक ढाँचे में अन्धविश्वासों की कोई जगह नहीं है। आइये, हम ढूँँहें कि सच्चाई क्या है और हम उस तक अपनी तर्क-संगत पहुँच कैसे बना सकते हैं ?

क्या होगा इससे ?



११२ पृष्ठ : कई चित्र : मूल्य १० रुपये
रंगीन आवरण : प्रामाणिक सामग्री

संपर्क : ६५, पत्रकार कालोनी, इन्दौर ४५२ ००१



तिनका ही सही किन्तु ससम्मान

- अपने प्राणों की चिन्ता बिना छोड़े (अर्थात् स्वयं कष्ट न उठाते हुए), जो लोग दुःसाध्य कार्य प्रारम्भ कर देते हैं, उन दूसरों का मुँह जोहने वालों को सफलता कैसे मिल सकती है ?
- प्रारम्भ कार्य (शुरू किये हुए काम) को छोड़ते समय अन्य लोग तो दूर रहें, अपने ही शरीर में जो पंचभूत हैं, उन्हीं से लाज लगती है।
- कार्य का आरम्भ शीघ्र करो, प्रारम्भ (प्रारम्भ किये हुए) कार्य में शिथिलता मत करो; क्योंकि प्रारम्भ किये हुए कार्यों में शिथिलता आ जाने से वे फिर कभी पूरे नहीं होते।
- धीर पुरुष भारी कष्ट से पीड़ित होने पर अपनी जीभ काट कर मर भले ही जाए; किन्तु खलों के आगे दीन वाणी नहीं बोलता।
- खलों के चरणों में प्रणत हो कर यदि तीनों लोकों की संपत्ति भी अर्जित कर ली जाए तो उससे क्या ? सम्मान से यदि तिनका भी अर्जित हो तो वह सुख देता है।
- मनस्वियों का मन अन्तिम दशा में भी उन्नत ही रहता है; अस्त होते समय भी सूरज की किरणें ऊपर उठ कर ही चमकती हैं।
- जब तक धीर पुरुष कोई कार्य करना स्वीकार नहीं कर लेते, तभी तक सुमेरु पर्वत ऊँचा है, समुद्र दुस्तर है और तभी तक कायसिद्धि में बाधाएँ आती हैं
- आकाश तभी तक विस्तीर्ण है, समुद्र तभी तक अतल है, और कुलशैल तभी तक बड़े हैं, जब तक उनकी तुलना धीरजवान् व्यक्तियों से नहीं की जाती।
- साहसी पुरुषों के लिए मेरु तिनके के समान, स्वर्ग घर के आँगन के समान, आकाश हाथ से छुए के समान और समुद्र क्षुद्र नदियों के समान हो जाता है
- जो पहले साथ था, या बना था, या बिगड़ गया था और अब जो बन रहा है, या बिगड़ रहा है, या साथ दे रहा है, उस भाग्य को छोड़ कर धीर पुरुष समारम्भ कार्य को कर डालता है।